

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180783

UNIVERSAL
LIBRARY

Call No. H82
M67A

Accession No. P. G.
H2235

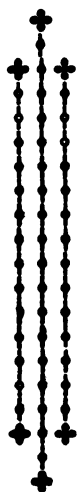
Author

Title

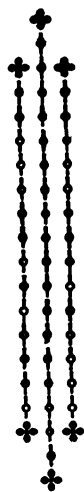
मिश्र, शारदा
त्रिकोण. 1956.

This book should be returned on or before the date last marked below.

त्रिकोण



शारदा मिश्र



हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

बनारस ।

प्रकाशक :

श्रीमत्प्रकाश बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी,

बनारस ।

प्रथम संस्करण : १२००

१९५६

आवरण :

‘मघर’

मूल्य :

तीन रुपये

मुद्रक :

श्री कृष्णचन्द्र बेरी

विद्या मन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०

डी० १५/२४, मानमन्दिर,

नारस ।

आमुख

‘त्रिकोण’ नारीत्व के तीन प्रश्नों का उत्तर देने का एक नारी द्वारा किया गया प्रयास है। क्या प्रारब्धवश पति-पत्नी में प्रतिकूलता उपस्थित होने पर पत्नी की प्रतिक्रिया विच्छेदकारिणी होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर ‘सूर्यपत्नी संज्ञा’ है। विवाह की सीमा से बाहर किया गया प्रेम क्या पाप है? इस प्रश्न का उत्तर ‘शेमित्रा’ है। द्रौपदी के चरित्र पर उसके अनेक पतियों की पत्नी होने के कारण जो प्रश्नसूचक चिह्न लगता है—कि यह क्यों हुआ, कैसे संभव हुआ, कैसे धर्म की मर्यादा जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, व्यास, युधिष्ठिर आदि ने इसे स्वीकार किया—इस समस्या को सुलझाने का प्रयास ‘द्रौपदी’ है। संक्षेप में ‘संज्ञा’ का अंतर्द्वन्द्व और उसके फलस्वरूप उसके अन्तर्मन के दो टुकड़े (Splitting of personality) हो जाना, प्रतिक्रिया की मूर्त रूप छाया द्वारा विवेक की प्रतीक ‘संज्ञा’ का अस्थायी काल के लिए बमन और निर्वासन, परन्तु अन्त में विवेक की प्रतिक्रिया के ऊपर विजय और छाया का सूर्यलोक से मर्त्यलोक में निपतन पहले प्रश्न का उत्तर देता है। प्रतिक्रिया के विरुद्ध व्यक्ति को सावधानी से मानसिक संतुलन और विवेक की रक्षा करनी चाहिये। सत्य स्थिति शिव और सत्वर है। अशिव और अशोभन प्रतिक्रिया सत्य प्रतीत होते

अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पांडवों की आसक्ति और गृह-संघर्ष की सम्भावना अथवा द्रौपदी की प्रबल महत्वाकांक्षा इस विचित्र सम्बन्ध के मूल में थी ? वास्तविकता जो कुछ भी रही हो, द्रौपदी का चरित्र एक प्रश्न है और यह नाटक इस प्रश्न की गहराई में उतरने का प्रयास है ।

—रामेश्वरनाथ मिश्र

प्रस्तावना

आयुष्मती श्री शारदा मिश्र को मैं प्रतिभाशालिनी और अध्ययन-
गीला महिला के रूप में ही जानता हूँ। बच्चों के लिये उन्होंने
हुत सुन्दर कहानियाँ लिखीं हैं। वे जो कुछ लिखती हैं उसके
लेखे बहुत अध्ययन करती हैं, विवेचना करती हैं और तब कहीं
केसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं। उनके इस नाटक-संग्रह को देख कर
मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। ये नाटक उनके गंभीर अध्ययन और
सूक्ष्म विचार-शक्ति के निदर्शन हैं। पौराणिक आख्यानों का इस
प्रकार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत कम हुआ है। इन नाटकों में
जिस प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों को पकड़ने और समझने का
प्रयत्न किया गया है वे मनोविज्ञान की दुनिया में तो परिचित हैं
किन्तु सनातन काल से समादृत पुराणप्रथित चरित्रों में उनको खोज
निकालन का प्रयत्न नवीन है। मुझे आशंका है कि इस प्रकार की
धारणा हमारे अनेक पाठकों के पुराने संस्कारों को चोट पहुँचायेगी।
मुझे स्वयं प्रथम अध्ययन के बाद धक्का लगा है, परन्तु मैंने लेखिका
की अन्तर्भेदिनी दृष्टि का परिचय पा कर साहित्यिक आनन्द का ही
अनुभव किया है। सभी पाठक कहाँ तक इस प्रकार के धक्के को
संभाल पायेंगे, यह मैं नहीं कह सकता। मैं तो आश्चर्यचकित
हो कर लेखिका के परिश्रम और विश्लेषण-शक्ति को सराहता हूँ।
मुझे इन नाटकों में 'शेमित्रा' अधिक पसन्द आया है। इसमें
लेखिका के अध्ययन और चिन्तन का मणिकाञ्चन योग है। कई
शब्दों के प्रयोग मुझे चिन्त्य जान पड़े हैं; किन्तु श्रीमती शारदा ने
उन शब्दों का विशेष अध्ययन किया है और उनका दावा है कि
उसी अर्थ में प्रयुक्त होने चाहिये जिस अर्थ में उन्होंने उनका

प्रयोग किया है। कहने का मतलब यह है कि उन्होंने प्रत्येक शब्द का प्रयोग समझ-बूझ कर किया है। सहृदय पाठक का इस विषय में मतभेद हो सकता है पर उनका प्रयोग असावधानी से या प्रमाद-वश नहीं हुआ है।

यह शारदा जी की पहली कृति है जो बालकों के लिये न होकर साहित्यिक सहृदयों के लिये लिखी गई है। इसमें उनके अध्ययन, विश्लेषण और सूक्ष्मदर्शिता का बहुत सुन्दर परिचय मिलता है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि वे दीर्घकाल तक साहित्य को और भी अधिकाधिक मूल्यवान् ग्रन्थों से समृद्ध करती रहें ? तथास्तु।

काशी विश्वविद्यालय
११-५-५६

}

हजारीप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

				पृ० सं०
१	...	सूर्य-पत्नी संज्ञा	...	११
२	...	शेमित्रा	...	४
३	...	द्रौपदी	...	७७
४	...	अनुक्रमणिका	...	११३

सूर्य-पत्री संज्ञा

सूर्य-पत्नी संज्ञा का पौराणिक आधार

भगवान् विवस्वान् (सूर्य) महर्षि कश्यप और देवमाता दक्षकन्या अदिति के पुत्र और प्रसिद्ध लोकपाल कहे गए हैं। शिल्पी विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से उनका विवाह हुआ। संज्ञा पहले मानवी थी किन्तु तप करके उसने दिव्याङ्गना का पद प्राप्त किया। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा, परम सुन्दरी, कलाकौशल-पंडिता और धीर-गम्भीर नारी थी। भगवती उमा की तरह कठोर तप करके ही उसे लोकपालों के स्वामी भगवान् सूर्य की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। परन्तु विवाह के पश्चात् उसके जीवन में कुछ ऐसी उलझनें आईं कि वह सुखी न हो सकी।

भगवान् सूर्य लोक-नायक थे। उनके प्रचंड तेज और प्रखर प्रकृति को सुकुमारी संज्ञा सहन न कर सकी। सूर्यलोक का ताप और पति का तेज उसे असह्य हो उठा। भगवान् सूर्य के पास बैठना, उनकी ओर देखना एक ऐसी त्रासजनक परिस्थिति उत्पन्न हुई जिससे उसके जीवन से शान्ति कर्पूर की तरह उड़ गई। वह उद्विग्न, दुखी और अशान्त रहने लगी। सूर्यलोक के ताप से उसके मस्तिष्क में उन्माद का धूम्र छाने लगा। लोक-कल्याण में व्यस्त भगवान् सूर्य संज्ञा की दशा पर ध्यान न दे सके। अन्त में

संज्ञा ने निश्चय किया कि मैं सूर्यलोक में रहने में असमर्थ हूँ । तब उसने अपने ही समान वर्णवाली छाया प्रकट की । वह पुरणों में छाया अथवा सवर्णा के नाम से विख्यात हुई । उसे अपने दो पुत्रों—यम और वैवस्वत मनु, और एक पुत्री—यमुना को सौंपकर संज्ञा ने अपने पित के घर जाने का निश्चय किया और छाया से कहा—“तू अब इस घर में रह और मेरी ही तरह भगवान् सूर्य की परिचर्या और पुत्रों का पालन कर ।”

कुछ समय तक संज्ञा अपने पिता विश्वकर्मा के यहाँ रही । इसके बाद पिता ने प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—“बेटी ! तुम तीनों लोकों के स्वामी भगवान् सूर्य की पत्नी हो, तुम्हें पिता के घर में अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिए ।” पिता के इस प्रकार कहने पर संज्ञा उन्हें प्रणाम करके चली गई और उत्तरकुल देश में जाकर तपस्य करने लगी । उसकी तपस्या का एक ही उद्देश्य था कि मेरे स्वामी की आकृति और प्रकृति सौम्य हो जाय ।

अब तक छाया-संज्ञा के भी दो पुत्र-शनैश्चर और सावर्णकमनु और एक कन्या—तपती हो चुकी थी । छाया अपनी सन्तान को जितना प्रेम करती थी उतना संज्ञा के पुत्रों को नहीं । मनु तो इस बर्ताव को सहन कर लेते थे पर यम से नहीं सहन हुआ । एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने उसे मारने को लात उठाई । छाया ने कुपित होकर शाप दिया—“मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हूँ किन्तु तुम मर्यादा का उल्लंघन करके मुझे मारने के लिए लात उठा रहे हो, इससे तुम्हारा पैर अभी गलकर गिर पड़ेगा और तुम नरक में पतित होगे ।” माता का शाप सुनकर यम भय से व्याकुल हो उठे । भगवान् सूर्य को भी यह शाप सुनकर आश्चर्य हुआ । माता अपने वात्सल्य को छोड़कर पुत्र को शाप दे डाले, यह बड़े आश्चर्य की बात थी । उन्होंने छाया को बुलाकर पूछा—“संज्ञा कहाँ गई ?” सूर्य ने कई बार घुमा-फिराकर पूछा किन्तु उसने सच्ची बात नहीं बताई । तब सूर्यदेव उसे शाप देने को उद्यत

हो गये । यह देखकर उसने सब बातें बता दीं । तत्पश्चात् उन्होंने ध्यानस्थ होकर देखा कि वह उत्तरकुरु प्रदेश में तप कर रही है । वे वहाँ जाकर अपनी पत्नी को ले आये । विश्वकर्मा ने उनके अनुरोध से सूर्य के तेज को कम कर दिया । इस प्रकार संज्ञा की उद्विग्नता शान्त हुई ।

यह तो हुआ पौराणिक आधार । परन्तु मुझे प्रतीत होता है कि संज्ञा तथा छाया एक ही नारी के दो रूप थे । अपने पति के साहचर्य से वंचित संज्ञा अपने पतिगृह में कष्ट पाने से कुछ काल तक सहन करने के पश्चात् अपना मानसिक संतुलन खो बैठी और अंतर्द्वन्द्व के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व के दो खण्ड हो गए । संज्ञा का पूरुरूप जितना शान्त और गम्भीर था उसका विकृत रूप उतना ही उच्छृङ्खल, प्रतिहिंसक और अमर्यादित हो गया । छाया-संज्ञा की समस्या मानसिक विकृति की समस्या है । नारी का वास्तविक रूप स्नेहमय, मर्यादित और शोलयुक्त है, परन्तु कभी कभी परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने पर नारी के अन्तर्मन में प्रतिक्रिया हो जाती है और उसके सहज उज्ज्वल स्वरूप पर एक आवरण पड़ जाता है । वही छाया-संज्ञा है । सूर्यपत्नी संज्ञा की पौराणिक आख्यायिका में मुझे इसी मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वन्द्व के दर्शन हुए हैं और साथ ही इस चरम सत्य की प्रतीति हुई है कि विकृति सत्य नहीं है और उसे शाश्वत समझना भूल है ।

पात्र

पुरुष :

भगवान् विवस्वान्—सूर्यलोक के स्वामी, प्रमुख लोकपाल, जगत्प्रकाशक, सूर्यमण्डल के अधिष्ठाता ।

भगवान् शिव ।

महर्षि कश्यप—विवस्वान् के पिता ।

विश्वकर्मा—देवताओं और मनुष्यों के महान् शिल्पकार, प्राचीन नगरों तथा देव-सभाओं के आदि निर्माता ।

स्त्री :

संज्ञा—लोकपाल विवस्वान् की पत्नी और विश्वकर्मा की पुत्री, मानवोचित दुर्बलताओं से पूर्ण एक दिव्यादिव्य नारी ।

छाया—संज्ञा के सूक्ष्म शरीर से निकली हुई एक छाया नारी । संज्ञा की दबी हुई भावनाओं का मूर्तरूप अथवा अभिव्यक्ति ।

[रूप-रंग में छाया संज्ञा की दूसरी प्रतिमा है । दोनों पात्रियों की एक ही सी आकृति तथा वेषविन्यास सजाना होगा । केवल रंग में अन्तर है । संज्ञाका वर्ण चन्द्रधवल है और छाया का थोड़ी श्यामता लिये है ।]

भगवती उमा—शिवपत्नी, ऊषा की बालसखी ।

देवी अदिति—भगवान् सूर्य की माता ।

गगनऊषा,	}	सूर्यलोक की बालिकाएँ
रश्मिमालिनी,		तथा
दिवा, अम्बरप्रभा, आभा		संज्ञा की परिचारिकाएँ ।

यम और यमुना—संज्ञा के सहजात पुत्र-पुत्री । आयु एक साल ।

स्थान :

सूर्यलोक ! यह आकाश में नित्य दिखाई देनेवाला सूर्य बिम्ब नहीं है। यह एक दिव्य लोक है, जहाँ सूर्य मण्डल के अधिष्ठाता भगवान् विवस्वान् सशरीर रहते हैं।

काल :

कल्प का आरम्भ। आदि सत्ययुग।

—:०:—

निर्देश :

रंगमंच के पर्दे तथा सजावट चमकीले रंगों की हो तथा विद्युत् के तीव्र आलोक से ज्योतिर्मय वातावरण उत्पन्न किया जाय ताकि दिव्य सूर्यलोक का आभास हो सके।

प्रथम अंक

[रंग-मण्डप का बाहरी पर्दा उठता है । नेपथ्य में संगीत की मधुर और धीमी ध्वनि—मानो कोई अलसाई हुई माता लोरी गा रही है । एक अत्यन्त सुसज्जित कक्ष, जिसके ठीक मध्य में एक रत्नजटित हिंडोला झूल रहा है । हिंडोले पर दोनों शिशु—यम और यमुना सो रहे हैं । गगनऊषा और रश्मिमालिनी हिंडोले को झुला रही हैं । दोनों श्वेत रेशमी वस्त्र पहिने हैं और रक्त कुसुमों का शृंगार किये हैं । वे नवयौवना दिव्य कन्याएँ हैं ।

नेपथ्य से लोरियों की ध्वनि तीव्र होती-होती यकायक मन्द हो जाती है ।]

गगनऊषा—महादेवी का संगीत कितना विचित्र है, रश्मि ! न जाने कैसी एक अव्यक्त करुणा, एक अनोखी मोहिनी मन और आँखों पर छा जाती है, धीरे-धीरे पलकें झपकने लगती हैं, शिथिल मन मानों निद्रा के प्रशांत सागर में डूबने लगता है—और बस एक ही मादक ध्वनि हृदय और आत्मा में गूँजने लगती है...बस वही थपकियाँ देते-से मधुर स्वर !

रश्मिमालिनी—और मुझे तो मालूम पड़ता है मानों मैंने सोम का चषक पी लिया हो। एक मीठी-सी वेदना रग-रग में छा जाती है। देख, ध्यान से सुन.... !

[नेपथ्य से फिर—मधुर रहस्यमय ध्वनि, साथ ही वीणा-वादन.....]

गगनऊषा—मेरी पलकों पर नींद नर्तन कर रही है, सोने दो मुझे।

[नींद में झूमती हुई बैठ जाती है, अपना सिर हिं ले पर रखकर नींद से मूर्छित हो जाती है।]

रश्मि उसे जगाती है, झकझोरती है पर कुछ क्षणों में उसकी भी वही दशा हो जाती है। धीरे-धीरे नेपथ्य से आनेवाली ध्वनि बन्द होती जाती है, साथ ही साथ इन दोनों की आँखें भी खुलती जाती हैं, वे अलसाई आँखों से एक दूसरे को देखकर मुस्काती हैं और अँगड़ाई लेकर खड़ी होने की चेष्टा करती हैं। पर अभी विद्रा-जसित पाँव लड़खड़ा रहे हैं।]

रश्मि (रु-रु-रु कर) —महादेवी को न जाने क्या सूझा है ? इस दिव्यलोक में भी मानवीय करुणा की धारा प्रभावित करती रहती हैं।

ऊषा—कुमार और कुमारी अभी कितना उत्पात कर रही थीं। उधर महादेवी ने शृंगार-कक्ष से अपना गान आरम्भ किया और इधर ये सोये।

(नेपथ्य से) —गगनऊषे ! रश्मि ! आभा ! कहाँ हो तुम लोग ?

रश्मि—देवी ! इधर है हम ! युवराज और कुमारी को सुला रहीं हैं।

(नेपथ्य से) —सो गये ?

रश्मि—हाँ देवि !

[सूर्य-पत्नी संज्ञा का सहसा प्रवेश। मानो कवि कल्पना ने शरत्क लीन बादलों से एक सौन्दर्य-प्रतिमा गढ़ डाली हो और काव्य एवं संगीत से प्राण फंक दिये हों।]

इस समय उद्विग्न, दुखी और अशान्त, तापसे झुलसी हुई-सी हल्के उन्माद की-सी दशा !]

महादेवी संज्ञा—क्यों रश्मि ! तुम भी मेरे संगीत की आलोचना करने का अधिकार रखती हो—इसलिये कि तुम सूर्यलोक की एक दिव्य नारी हो और मैं एक साधारण मानवी ?

रश्मि—देवि ! अपराध क्षमा हो ! आप लोकपालों के स्वामी भगवान सूर्य की धर्मपत्नी हैं, साधारण मानवी नहीं ।

ऊषा—देवि ! आपको भ्रम हुआ है । रश्मि आपके संगीत की स्तुति कर रही थी, आलोचना नहीं ।

संज्ञा (माथे पर हाथ रखकर)—ओह ! यह मुझे क्या हुआ है ! साधारण बात भी उलटी समझ बैठती हूँ । शरीर की धमनियों में मानों उत्तप्त-जल प्रवाहित हो रहा है, हृदय में मानों अग्निकुण्ड दहक रहा है जिसकी भाप मेरे मस्तिष्क को प्रतिक्षण जला रही है । ओह ! यह सूर्यलोक ।

[मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है ।]

ऊषा (घबड़ा कर)—ओह ! देवी फिर मूर्च्छित हो गयीं । हा परमेश्वर !

रश्मि (दौड़कर ताड़का पंखा लाती है और हवा करती है)—दिन में दो-दो बार मूर्च्छा । हा भगवती महामाया ! रक्षा करो ।

[संज्ञा की साँस और तेज चलती है—ओठ धीरे-धीरे हिलते हैं—पानी ! पानी !—रश्मि और ऊषा की सम्मिलित पुकार....

आभा और दिवा का प्रवेश ! ये भी सूर्यलोक की दिव्य कन्याएँ हैं । देवी की दशा देखकर घबरा जाती हैं ।]

ऊषा—आभा ! शीतल कमलदल ला ।

रश्मि—चन्द्रोदय औषधि और अंगराग भी ।

[सब मिलकर उपचार करती हैं । मुँह खोलकर चन्द्रोदय औषधि मुँह में डालती हैं । संज्ञा की चेतना लौट आती है । उठकर बैठ जाती है । परिचारिकाएँ जल का पात्र मुख से लगाती हैं । संज्ञा मुस्कराने की चेष्टा करते हुए चारों ओर देखती है ।]

संज्ञा—ऊषा, प्रभा, रश्मि, आभा, दिवा, तुमलोग सूर्यलोक की बालिकाएँ हो या भगवान् भास्कर की किरणें ?

दिवा—देवि ! इस लोक में कन्याओं के ऐसे ही नाम होते हैं ।

रश्मि (आश्चर्य होकर)—देवि ! आपका मधुर हास्य देखकर मेरे प्राण लौट आये हैं । (गगनऊषा से) कुमार जग गये हैं उन्हें उद्यान में ले जा ।

संज्ञा—रश्मि ला, मैं अपने वत्स का चुम्बन लूंगी, अपनी नन्ही बालिका को हृदय से लगाऊँगी ।

[बच्चों को चूमकर गोद में लेने का प्रयत्न करती है ।]

ऊषा—अभी नहीं देवि ! अभी आप बहुत निर्बल हैं ।

[बच्चों को लेकर जाती है । परिचारिकाओं की सहायता से संज्ञा हिंडोले पर बैठ जाती है । रश्मि और आभा व्यजन करती हैं ।]

दिवा—देवि ! आपकी यह दशा हमसे नहीं देखी जाती ।

[रोती है ।]

रश्मि—दिवा, तू जा !....महादेवी ! अब आप स्वस्थ हैं न ?

महादेवी संज्ञा (कुछ सोचकर धीरे-धीरे)—रश्मि ! तुम्हारे इस सूर्यलोक का ताप ! यहाँ की शरीर को झुलसा देनेवाली ऊष्ण हवाएँ अब मैं न सह सकूँगी । दो दिव्य वर्षों तक सहा बस अब जी चाहता है... (कल्पना में डूबकर)—हिम से ढकी हुई हिमालय की चोटियों पर चढ़कर धीरे-धीरे कैलास की उपत्यकाओं में जा रमूँ; जहाँ ऊपर नीचे, दाएँ, बाएँ, हिम ही हिम हो और अतल मानसरोवर के जल में डूब जाऊँ, पद्मों के बिस्तर पर सिर रखकर सो जाऊँ और कभी न जागूँ । ओह, यह प्रतप्त, अभिशप्त सूर्यलोक.... !

[दोनों हाथों से मुँह ढक लेती है ।]

रश्मि—देवि ! अशुभ कल्पना न करें । क्या आपने लोकपाल भगवान् विवस्वान् से निवासस्थान-परिवर्तन का अनुरोध किया था ?

संज्ञा—रश्मि ! तुम्हारे प्रभु को सारे संसार की प्रार्थनाएँ सुनने का अवसर है । यदि समय नहीं है तो केवल अपनी धर्मपत्नी के अनुरोध सुनने का ।

रश्मि—देवि ! लोकपालों का जीवन बहुत व्यस्त है ।

संज्ञा—इसमें क्या सन्देह है ! आज एक पक्ष से उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ । अभी तक उन्हें अपनी विरहिणी पत्नी के पास आने तक का अवकाश नहीं मिला ।

रश्मि—देवि ! त्रैलोक्य के कल्याण के लिये पूज्य पिता महर्षि कश्यप के आश्रम में लोकपालों की सभा हो रही है । भगवान् विवस्वान् वहीं व्यस्त हैं ।

संज्ञा (तीव्र स्वर में)—त्रैलोक्य के कल्याण में भला पत्नी के कल्याण का स्थान कहाँ ।

रश्मि—देवि, राजनीति ऐसी ही पिशाचिनी है, जिसके जाल में फँसकर मनुष्य कोमल कल्पनाओं की प्रतीक अपनी प्रेयसी को भी भुला बैठता है ।

संज्ञा—और जीवन-पंक में पंकज की तरह खिले हुए अपने प्राण प्रिय बच्चों को भी....

रश्मि—वहाँ बस अधिकार-मद और अधिकार-तृष्णा, केवल यशप्राप्ति की ज्वाला....

संज्ञा (सँभलकर)—नहीं रश्मि, वे उदात्त हैं पर अपनी प्रजा के लिये, वे उदार हैं पर आदित्य-हृदय-स्तोत्र का पाठ करनेवाले तपस्वियों के लिये । वे वरदानी ह पर केवल ऋषियों के लिये । उनके हृदय में संज्ञा के लिये कोई स्थान नहीं । क्योंकि संज्ञा एक तुच्छ मानवी है, कहाँ शिल्पकार विश्वकर्मा की पुत्री और कहाँ वे, लोकपालों प्रतापी सूर्य !

रश्मि—देवि ! ऐसा न सोचिये । हमारे स्वामी की प्रकृति इतनी गहन गम्भीर है कि उनके मानस में छिपी हुई प्रेम की किरणें कभी व्यक्त ही नहीं हो पातीं ।

संज्ञा—जहाँ प्रतिपल प्रकाश की प्रखर किरणें निकल रही हों वहाँ प्रीति की शीतल ज्योत्स्ना के लिए स्थान कहाँ ?

रश्मि—देवि, प्रभु के गम्भीर प्रेम को समझने का प्रयत्न करें ।

संज्ञा (सिसकते हुए)—प्रयत्न....? [उसका कण्ठ सहसा अस्फुट रोदन से भर जाता है, शब्द टूट-टूटकर निकलने लगते हैं] मैंने उनसे कहा—आर्यपुत्र ! मैं आपके इस प्रचण्ड मार्तण्ड-रूप को सहन नहीं कर सकती । देव ! अपनी प्रेयसी के लिये केवल कुछ क्षणों के लिये सौम्य रूप रखकर आयेँ जिससे मैं आपकी भुज-वल्लरियों से लिपटकर अपने अन्तर्दाह को शीतल कर सकूँ । पर नहीं....

दिवा—देवि ? धैर्य रखें !

रश्मि—देवि ! शान्त हों !

संज्ञा (उन्माद की दशा फिर आरम्भ होने लगती है)—वे बारह मासों में बारह रूप धारण करके प्रजा का पालन करते हैं । मैंने प्रजापति कश्यप से सुना है—

चैत्र मास में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान रूप धारण करते हैं....बारह बार रूप बदलते हैं । केवल पत्नी की कामना पूरी करने के लिये सौम्य शान्त रूप नहीं धारण कर सकते, क्योंकि सनातन नियम नहीं है ।....

[उद्वेग से कांपने लगती है और उन्मादग्रस्त होकर—]

...हाय क्यों मैं उनके तेजस्वी रूप को देखकर मुग्ध हुई । हे लोक-साक्षी प्रभु ! क्या इसी दाम्पत्य प्रेम के लिये मैंने बारह साल तक हिमांचल पुत्री उमा के साथ कठोर तपस्या की !

दिवा—देवि ! भगवती उमा आपकी बाल-सखी हैं न ?

संज्ञा—हाँ, हम दोनों ने योग्य वर पाने के लिये एक साथ ही कठोर तप किया था पर फल में कितना अन्तर....ओह !....

रश्मि (कुछ आहत होकर)—देवि ! हमारे स्वामी भगवान् आदित्य भगवान् शिव से पद-मर्यादा में किसी प्रकार भी कम नहीं हैं ।

संज्ञा—और नारी हृदय पहचानने में....? रश्मि, जब तेर विवाह होगा तब तुझे पता चलेगा । नारी केवल एक वस्तु चाहती

है—अनुराग, केवल अनुराग... ओह, शिव और उमा का दाम्पत्य प्रेम । महादेव-गौरी की जोड़ी मानव-कन्याओं का एक मधुर स्वप्न हो गयी है ।

सखी—उमा नृत्य नहीं जानती थी, प्रभु पुरारि ठहरे नृत्य-नाट्य के आचार्य ! उन्होंने उमाको एक-एक भाव, नृत्य-मुद्रा और पदविक्षेप की शिक्षा देकर लास्य नृत्य सिखाया । उमा को कैलाश में रहना उचित न लगा, प्रभु ने काशी में अन्नपूर्णा की नगरी बसाई । जब कभी भी बाहर निकलेंगे कंठ से माधवीलता की तरह लिपटी हुई गिरिजा । प्रेम के कारण उन्होंने कभी लोकापवाद की परवाह भी नहीं की—अर्धनारीश्वर हो गये... (प्रेमाश्रु भरकर)... आह ! तपस्या तो शैलपुत्री की ही सफल हुई... (रुक-रुककर)... और मेरे प्रभु ! लोक-प्रकाशक आदित्य । संसार को शायद यह पता भी नहीं है कि उनकी कोई पत्नी भी है जो घर पर बैठी उनकी विरह-अग्नि में जलती हुई उनके एक मधुर सान्त्वनामय शब्द के लिये तरसती रहती है ।

दिवा—देवि ! आपने तो प्रभु को प्रसन्न करने के लिये....

संज्ञा—क्या नहीं किया मैंने ? पिता से सीखी हुई शिल्पकला व्यर्थ हो गयी । यह रत्नजटित हिडोल मैंने स्वयं प्रभु के बैठने के लिये बनाया था । पर उन्हें अवकाश कहाँ कि इसके शिल्प को देखें—मेरी गन्धर्व-मोहिनी बीणा तड़पती रहती है कि केवल एक बार प्रभु मेरे तारों से निकलती हुई अतृप्त रागिनी सुन लें । पर, उन्हें अवकाश कहाँ—मेरा काव्य... मेरी नवीन रागिनियाँ... हाय ! उन्हें कौन सुने—आदित्य ! मेरे प्रभु ! उन्हें तो मुझसे घृणा है... घृणा... घृणा... !

[फिर मूर्च्छित हो जाती है ।]

दिवा और रश्मि—ओह फिर यह मूर्छा... वैद्य... चिकित्सक !

[परिचर्या करती है ।]

पटाक्षेप ।

द्वितीय अंक.

[स्थान : उसी भवन का एक दूसरा कक्ष जो कुछ शीतल और थोड़ा अन्धकारमय है । एक स्वर्ण-पर्यंक पर संज्ञा शिथिल पड़ी है । ऊषा और आभा पंखा झल रही हैं । रश्मि संज्ञा के मस्तक पर हिम-शीतल जल से भोग वस्त्र रख रही है । संज्ञा की आँखें खुली हुई हैं, कभी-कभी पुतली ऊपर चढ़ जाती है और वह छटपटाकर करवटें बदल रही है ।]

संज्ञा—ऊषा ! प्रभु आये ?

ऊषा—देवि ! मैंने दूत भेजा है । प्रभु आते ही होंगे ।

आभा—देवि अस्वस्थ हैं, वह सुनकर तो प्रभु एक क्षण भी वहाँ न रुकेंगे ।

रश्मि—देवि चिन्ता न करें । इस तरह जागते-जागते आपको तीन रातें बीत चुकी हैं—इस अनिद्रा से आप की कैसी दशा हो गई है ।

संदेशवाहक—महादेवी की जय हो ! लोकपालों के स्वामी प्रभु आदित्य ने कहा है—‘आवश्यक कार्य आ पड़ने के कारण मैं अभी आगामी पूर्णिमा तक न आ सकूंगा । मैं देव-चिकित्सक को भेजता हूँ ।’

रश्मि (अंचल से मुंह ढककर मानो आंसू रोक रही हो)—
कहाँ हैं चिकित्सक ! शीघ्र भेजो । देवी की दशा शोचनीय है ।

संदेशवाहक—देव-चिकित्सक स्नान कर रहे हैं । मैं अभी
भेजता हूँ ।

[जाता है ।]

[संज्ञा उठकर बैठ जाती है । उसकी दृष्टि रंगभूमि के पृष्ठ-
भाग पर पड़े हुए पर्दे पर पड़ती है । धीरे-धीरे पर्दा उठता है ।
शंकर और पार्वती कैलाश के शिखर पर नृत्य करते हुए दिखाई
पड़ते हैं । यह दृश्य कुछ क्षणों तक दिखाई देता है फिर पर्दा
गिर जाता है ।]

संज्ञा (अपलक दृष्टि से देखती हुई)—रश्मि ! तूने देखा ! मेरी
सखी उमा अपने प्रियतम के साथ नृत्य कर रही थी ।

[रश्मि और आभा आश्चर्य के साथ एक दूसरे की ओर देखती
हैं । वास्तव में यह दृश्य केवल दर्शकों के लिए है । रंगभूमि के
पीछे के पर्दे पर जो दृश्य दिखाई पड़ रहे हैं वे केवल संज्ञा की उन्माद
जनित कल्पना पर निर्मित हैं ।

फिर पृष्ठपट उठता है । अब की बार देवशिल्पी विश्वकर्मा किसी
भवन के निर्माण में व्यस्त दिखाई देते हैं । संज्ञा की जननी देवी
चित्रलेखा भवन की दीवारों पर चित्र-रचना करती हुई दिखाई पड़ती हैं ।]

संज्ञा (व्याकुल होकर दौड़ती हुई)—ओह, मेरे तात । अम्ब !
तुम आ ही गये अपनी दुलारी कन्या की सुधि लेने ! माँ, ले चलो
मुझे । छिपा लो अपने अङ्ग में ।

[पर्दा गिर जाता है । संज्ञा हतबुद्धि की तरह देखती है ।]

आभा और रश्मि (संज्ञा को संभालकर)—देवि, कुछ भी तो
नहीं है । तत्रभवान् विश्वकर्मा और आर्या चित्रलेखा तो इस समय
मानव-लोक में हैं ।

संज्ञा (विस्मित होकर)—और अभी यहाँ कौन आया था ?

रश्मि—महादेवी विश्राम करें ।

[संज्ञा पर्यंक पर लेट जाती है। ऊष्ण उच्छ्वासों के वेग से उसका वक्ष उद्वेलित हो रहा है। दीर्घ निश्वासों की ध्वनि दूर तक सुनाई पड़ रही है। वह फिर उठकर बैठ जाती है।]

संज्ञा (रश्मि से पूछती है)---रश्मि ! क्या प्रभु अब कभी न आयेंगे ?

रश्मि---देवि ! धैर्य रखें। प्रभु आते ही होंगे।

[संज्ञा पर्यंक पर गिर जाती है और चोट खाई हुई सर्पिणी की भाँति फुफकारती है। देव चिकित्सक---धन्वन्तरि का प्रवेश। वे हाथमें औषधि रससे भरा हुआ घट लिये हुए हैं।]

धन्वन्तरि---भगवती सूर्य-पत्नी, प्रणाम निवेदन करता हूँ।

[संज्ञा क्रुद्ध दृष्टि से चिकित्सक की ओर देखती है।]

आभा---आर्य ! महादेवी का चित्त बहुत ही व्याकुल है। कोई ऐसी औषधि दें जिससे चित्त शान्त हो जाय और नींद आ जाय।

[देव-चिकित्सक संज्ञा की परीक्षा करते हैं। नाड़ी देखकर पलकें उलटते हैं।]

धन्वन्तरि (फिर एक क्षण सोचकर रश्मि से जनान्तिक)---भद्रे ! इस रोग की मेरे पास कोई औषधि नहीं है। देवी को विरह-जनित उन्माद पीड़ा दे रहा है।

रश्मि (जनान्तिक)---आर्य ! देवी चिरकाल से प्रभु की प्रतीक्षा करते-करते व्याकुल हो गयी हैं। लगातार तीन रातें एक क्षण भी नहीं सोई।

धन्वन्तरि---भद्रे ! महादेवी की चिकित्सा तो केवल भगवान विवस्वान् ही कर सकते हैं किन्तु वे लोक कल्याण में इतने व्यस्त हैं कि अभी कुछ दिन न आ सकेंगे---(रश्मि आँखें पोंछती है)---अस्तु। मैं एक ऐसी औषधि देता हूँ जिससे देवी शान्ति से सो सकें---(औषधि बनाकर देते हैं)---भद्रे ! इस औषधि का देवी के मस्तक पर लेप करना और यह दूसरी औषधि जल में मिला कर रात्रि में तीन बार पिलाना। भगवती महाशक्ति कल्याण करेंगी।

[जाते हैं...कुछ क्षणों तक निस्तब्धता।]

[आभा औषधि लेकर संज्ञा के मस्तक पर लेप करती है । संज्ञा की आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकती हैं । धीरे-धीरे उसकी आँखें जलने लगती हैं, वह उत्तेजित होकर उठ जाती है और रंगभूमि पर उन्मत्त अवस्था में घूमती है । क्रुद्ध सर्पिणी की सी फुफकारें अभी भी निकल रही हैं ।]

संज्ञा (सहसा क्रोध से जलते हुए स्वर में)---रश्मि ! तुम लोग जाओ मैं एकान्त चाहती हूँ---

आभा---महादेवि यह औषधि पी लें....

[संज्ञा झपटकर औषधि झटक लेती है और पृथ्वी पर पटक देती है । औषधि-रस बिखर जाता है ।]

रश्मि (दुःखी होकर)---ओह देवि ! यह औषधि....

संज्ञा (क्रुद्ध स्वर में)---औषधि---औषधि---मैं कहती हूँ जाओ यहां से !---(पैर पटक कर)---मैं एकान्त चाहती हूँ । मेरी आज्ञा का पालन हो । अब भी मैं सूर्यलोक की महादेवी हूँ ।

रश्मि और आभा (सहमकर)---महादेवी विथ्राम करें । हम जाती हैं । [दुखी होकर जाती हैं ।]

[संज्ञा---पलंग की पाटी पर सिर पटक-पटक कर फूट-फूटकर रोती है । उसकी अतृप्त आँहों से उसका वक्ष उफन रहा है । सिसकियों की आवाज से रंगभूमि प्रतिबिम्बित हो रही है । अचानक रंगभूमि की ज्योति बुझ जाती है । हलका अन्धकार छा जाता है । दर्शकों को केवल संज्ञा के शरीर की अस्पष्ट रेखाएँ दिखाई दे रही हैं । उसकी सिसकियों के स्वर अब भी सुनाई पड़ रहे हैं । सहसा संज्ञा की आँख, नाक और मस्तक से धुआँ निकलता हुआ दिखाई देता है । वह धूमराशि पहले समस्त रंगभूमि में फैल जाती है । धीरे-धीरे वह धूम्र एक अस्पष्ट आकार लेकर रंगभूमि में आगे बढ़ता है और उसमें एक नारी की छायामूर्ति दिखाई देती है । प्रकाश-दीप फिर अचानक जल उठते हैं और दर्शकों के आश्चर्य-मग्न नेत्रों को रंगभूमि पर दो दिव्य नारियाँ दिखाई देती हैं, जो

रूपरंग, आकार-प्रकार में एक दूसरे की प्रतिबिम्ब प्रतीत होती हैं । अगर दर्पण से किसी का प्रतिबिम्ब शरीर धारण करके दर्पण की परिधि से बाहर खड़ा हो जाय तो यह कहना कठिन होगा कि कौन बिम्ब है और कौन प्रतिबिम्ब । ठीक इसी प्रकार यहाँ भी यह कहना कठिन है कि कौन-सी वास्तविक संज्ञा है और कौन-सी छाया-संज्ञा । इनमें से एक संज्ञा वेदना की प्रतिमा-सी सिसकती हुई खड़ी है, दूसरी गर्व और उपेक्षा के साथ अट्टहास कर रही है । दोनों एक दूसरे की ओर दृष्टिपात करती हैं ।]

संज्ञा (आश्चर्य से स्वगत)—यह कौन नारी है ? भ्रम होता है मानो मैं ही हूँ । (प्रकट)—तुम कौन हो ? छलनामयी मेरी आकृति बनने में क्या रहस्य है ?

छायासंज्ञा (अट्टहास करती हुई)—छलनामयी... नहीं मैं... (फुसफुसा कर)—मैं ही संज्ञा हूँ... संज्ञा की संज्ञा....

संज्ञा—तो मैं कौन हूँ ?

छायासंज्ञा—यह तुम जानो कि तुम कौन हो—मैं तुम्हारी अन्तरात्मा हूँ—तुम्हारे अन्दर निवास करनेवाली ।

संज्ञा (विस्मित होकर)—तुम मेरी अन्तरात्मा हो... अब तक कहाँ थी ?

छायासंज्ञा—छाया सदा शरीर के साथ ही रहती है । मेरा यह सूक्ष्म शरीर तुम्हारे इसी स्थूल शरीर में घुला-मिला था ।

संज्ञा—क्या मेरे अन्दर दो शरीर थे ।

छायासंज्ञा—प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर दो देही होते हैं । एक उसके बाह्य कार्यों का नियमन करता रहता है, अपने विवेक और संयम द्वारा उसे समाज में प्रतिष्ठा दिलाता है—

संज्ञा—और दूसरा अन्तर्देही ?

छायासंज्ञा—वह उसके उस विवेक और संयम पर दाँत किट-किटाता रहता है, उसके अन्दर विद्रोह का ज्वालामुखी निरन्तर जलता रहता है—उसका वश चले तो.... (बिकट अट्टहास करते हुए)—

उसका वश चले तो अपनी कामना पूरी न करनेवाले का हृदय फाड़कर उसका रक्त पी जाय ।

संज्ञा—क्या.... ?

छायासंज्ञा—मूर्खे, तुझे मेरी बात सच न मालूम पड़ेगी । अच्छा मुझे बता—यदि तू मनोयोग से चित्ररचना कर रही हो और तेरा शिशु चीख-पुकारकर तेरे कार्य में विघ्न डाले तो तू क्या करेगी ?

संज्ञा—थोड़ी झुंझलाहट तो अवश्य आयेगी ।

छायासंज्ञा—नहीं तेरा जी कहेगा, पटक दे इस दुष्ट को पृथ्वी पर, जिससे सदा के लिये शान्त हो जाय—न रहे बाँस न बजेगी बाँसुरी । [हा-हा करके हँसती है ।]

संज्ञा—हे भगवती महाशक्ति ! यह मुझे क्या सुना रही है । यह आसुरी है या राक्षसी (प्रकट)—क्या परिणाम न सोचा जायगा । अपने ही बच्चे को धरती पर पटककर मारने से पीछे उसके लिये रोना न पड़ेगा ?

छायासंज्ञा (क्रोध से)—नहीं, कदापि नहीं—परिणाम की चिन्ता वही दूसरा ढोंगी मन करता है जिसके विवेक और संयम ने जीवन दूभर कर रखा है—मैं तो चाहती हूँ—विनाश—(विकट स्वर से) विनाश—अपने मार्ग में रोड़े अटकानेवाले—अपनी कामनाओं की पूर्ति में विघ्न डालनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का—प्रत्येक वस्तु का विनाश ।

संज्ञा (सहमकर)—तुम क्या हो.... ?

छायासंज्ञा (धीरे से)—मैं तुम्हें बता चुकी हूँ, मैं तुम्हारे अन्तर्मन में रहनेवाली तुम्हारी अन्तरात्मा हूँ ।

संज्ञा (दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द करते हुए)—मेरी अन्तरात्मा...ऐसी कलुषित ?

छायासंज्ञा—कलुषित नहीं, स्वाभाविक, प्राकृतिक । विवेक की यवनिका में छिपी हुई, अन्तर्मन के कारागार में बँधी हुई । सभी की

अन्तरात्मा ऐसी ही होती है। जब मन, विवेक का डंडा दिखाकर समाज और परिणाम का भय दिखाकर सज्जनता और आदर्शवाद का ढोंग रचता रहता है, तब यह सच्ची प्राकृतिक अन्तरात्मा पिंजरे के अन्दर बन्दी हुए सिंह की भाँति गरजती रहती है।

संज्ञा—ओह !

छायासंज्ञा—जब बाह्य मन ब्रह्मचर्य का ढोंग रचता है, अन्तरात्मा नग्न सौन्दर्य का चुम्बन करता रहता है—जब बाह्य मन अहिंसा के गीत गाता है, त्याग और तितिक्षा की महिमा बखानता है, अन्तर्मन अपने शत्रु को, अपना अधिकार छीननेवाले को, अपनी प्रेयसी का प्रेम लूटनेवाले को भुनगे की तरह मसलकर अट्टहास करना चाहता है। वही है व्यक्ति की वास्तविक अन्तरात्मा—वही है उसका सच्चा व्यक्तित्व।

संज्ञा (आवेश में)—और संयम, तप, परोपकार, जिज्ञासा, शान्ति और क्षमा, करुणा और अनुराग ये सब झूठ हैं ?

छायासंज्ञा—हाँ, ये सब झूठे चेहरे हैं—संसार को ठगने के लिये ओढ़े हुए बाह्य आवरण—नग्न काम की अतृप्त पिपासा, प्रतिहिंसा की अदम्य वासना, विनाश और विद्वेष, प्रतिक्षण धधकती हुई अतृप्त कामनाएँ, यही है व्यक्ति की सच्ची अन्तरात्मा। संज्ञा ! मैं तुम्हारी वही संज्ञा हूँ।

संज्ञा—यदि ऐसा है, तो हे प्रतिहिंसामयी ! मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ—तुम जहाँ से निकली हो वहीं समा जाओ। मुझे तुम्हारे दर्शन से भी भय लग रहा है।

छाया—मैं तुम्हारे वश में नहीं, तुम मेरे वश में हो।

संज्ञा—आखिर तुम बाहर क्यों निकली ? क्या तुम वहीं नहीं रह सकती थी ?

छाया—मैं तुम्हें कितनी बार समझाऊँ ! मैं तो तुम्हारी अतृप्त और अदम्य वासनाओं के सूक्ष्म रूप में तुम्हारे शरीर में घुली-मिली

थी, तुम्हारी भावनाओं के आवेग ने ही मुझे स्थूल बनाया है। अब तो अपना काम पूरा करके ही जा सकती हूँ।

संज्ञा—क्या काम ?

छाया—प्रतिहिंसा...विनाश...नग्नकाम...मैं लोकपाल आदित्य से बदला लेने को उत्पन्न हुई हूँ।—(दाँत किटकिटाकर)—और लेकर ही रहूँगी।

संज्ञा—बदला ! अपने प्राणनाथ से, अपने प्रियतम से—लोक-कल्याण में लगे हुए लोकपालेश्वर—भगवान् विवस्वान् से ?

छाया—हाँ-हाँ। उसी व्यक्ति से, जिसके लोककल्याण के प्रचंड ताप ने मेरे यौवन-कुसुम को झुलसा डाला है।

संज्ञा—तनिक सती-धर्म का भी विचार करो। क्या नारी का यही धर्म है ?

छाया—हाँ, नारी का प्राकृतिक धर्म यही है, जो पुरुष उसके प्रेम को, उसके मन्मथ-मथित हृदय को कुचल दे, उसका सर्वनाश करना नारी का प्राकृतिक धर्म है।...जो उसके सुख में आग लगाये उसका हृदय जब तक उसी अशान्ति की दावाग्नि में न दहक उठे, तब तक उग नारी को नारी समझना मूर्खता है।

संज्ञा—इतना द्वेष न करो। मेरे प्रभु कर्तव्य के बोझ से दबे हुए हैं। इसीलिये मेरे प्रणय का प्रतिफल न दे सके।

छाया—वे मेरे प्रियतम नहीं, शत्रु है। उन्होंने मेरे मान-भरे हृदय को ठुकराया है, मैं उनके सुख को, उनके दाम्पत्य जीवन के सुख को मिट्टी में मिला दूँगी। हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा से दूँगी—(संज्ञा को धक्का देकर)—तू जा यहाँ से, यह राजभवन, यह दास-दासियाँ, यह ऐश्वर्य, यह अधिकार आज से मेरे हैं। उस अन्यायी आतंकवादी पुरुष से, उस पति कहलानेवाले हृदयहीन से बदला लूँगी—अवश्य लूँगी।

संज्ञा—जाऊँ ! अपना घर, अपने हृदय के टुकड़े बच्चों को छोड़कर ?

छाया—वे हृदय के टुकड़े नहीं हैं, उसी अन्यायी पुरुष के सम्पर्क के स्मृतिचिह्न हैं। अगर प्रतिहिंसा की अग्नि शान्त करने के लिये मुझे ये चिह्न भी मिटाने पड़ें तो न हिचकूंगी।

संज्ञा—ओह ! दानवी....!!

छाया—तू न जायगी ? उस अन्यायी पति का पक्ष लेती ही जायगी—(क्रोध से संज्ञा के केश पकड़कर)—तुझे पैरों की ठोकड़ों से निकालना पड़ेगा।

संज्ञा (रोते हुए)—हे भगवती महामाया ! मेरी रक्षा करो। कहाँ से यह पिशाचिनी मेरे दाम्पत्य जीवन के नन्दनवन में आग लगाने आ गई है। देवि ! चराचर में व्याप्त अव्यक्त चेतने ! मेरे प्रणय की, मेरे वात्सल्य की, मेरे गृहस्थ-सुख की रक्षा करो। हाय, यह तो मेरे प्राणाधार पति को और मेरे मधुर स्वप्न से कोमल लाड़ले बालकों को भी छीने ले रही है.....

[मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।]

[आकाशवाणी—गगन व्यापी गम्भीर नाद सुनाई पड़ता है।]

पुत्री ! उठो कैलाश पर जाकर तीन संवत्सर पर्यन्त तप करो। यह व्याधि इस तरह शान्त न होगी। यह दानवी तुम्हारी ही अशुभ विषाक्त भावनाओं से पैदा हुई है, उसका प्रायश्चित्त तुम्हीं को करना होगा। जाओ और तप करके अपनी आत्मा के कलुष को जला डालो, नहीं तो यह तेरी आसुरी आत्मा तेरे संसार पर इसी तरह मंडराती रहेगी।

संज्ञा—भगवती, दिव्य चेतने, मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करती हूँ। मैं कठोर तप करके अपनी पाप-भावनाओं को नष्ट करूंगी।

[जाती है, केवल छायासंज्ञा रंगमंच पर अट्टहास करती हुई रह जाती है।]

तृतीय अंक

विष्कम्भक

समय तीन दिव्य वर्ष पश्चात्

[सहमती हुई गगनऊषा का प्रवेश]

गगनऊषा (चारों ओर देखकर डरते हुए)—बस अब नहीं रह सकूँगी । यह दिव्य सूर्यलोक है या उच्छृङ्खलता का अखाड़ा मानव-लोक । मैं प्रभु से आज्ञा माँग कर महर्षि कश्यप के आश्रम में देवी अदिति के पास रहूँगी ।

[सूर्यपुत्र कुमार यम और कुमारी यमुना के साथ अम्बरप्रभा का प्रवेश । यम और यमुना रो रहे हैं और अम्बरप्रभा उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रही है ।]

अम्बरप्रभा—कुमारी रोओ नहीं । (ऊषा से)—ऊपे ! तीनों लोकों और चौदहों भुवनों में भी ऐसी पिशाचिनी माता देखने में नहीं आयेगी ।

गगनऊषा (सकोप)—क्यों व्यर्थ अपनी स्वामिनी को अपशब्द कह रही है ?

अम्बरप्रभा—स्वामिनी ! अरी मेरी स्वामिनी है यह ! कहाँ वह गन्धर्व मोहिनी वीणापर विहाग की करुण पवनियाँ मुखरित

करने वाली स्वप्नमयी, कहाँ यह वज्रकर्कश स्वर से प्रियजनों को झिड़कने वाली कालरात्रि....!

गगनऊषा—कहाँ तो हमारे स्वामी भगवान् आदित्य के आने में एक दिन भी देरी होती थी तो इन्हीं महादेवी के करुण क्रन्दन सुन कर आदित्य भवन के शुक-सारिका भी हा नाथ....हा नाथ !.... कहके रोया करते थे ।

अम्बरप्रभा—और अब ! वे ही हमारे प्रभु उत्कण्ठापूर्वक प्रमोद-उपवन में इनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

गगनऊषा—और ये देवी सोलह शृंगार करके अन्य देवों के साथ, परपुरुषों के साथ, गन्धमादन पर्वतपर विहार करने चली गयीं ।

अम्बरप्रभा—सूर्यलोक की मर्यादा और आदित्यवंश का कुल-गौरव तो उसी दिन मिट्टी में मिल गया जिस दिन....

गगनऊषा—जिस दिन प्रजापति कश्यप और देवजननी की पुत्रवधु संज्ञा देवराज इन्द्र की सभा में गणिका की तरह नाचीं....

अम्बरप्रभा—प्रभुने कितना रोका, पर महादेवी यही कहती रहीं—नृत्य-नाट्य में भाग लेना मनोरंजनका साधन है ।

गगनऊषा—फिर देव सभामें राजनर्तकी की तरह महादेवी के वे कटाक्षपात, वे हाव भाव.....

अम्बरप्रभा—सब देवगण एक दूसरे की ओर देख मुस्करा रहे थे और इनके व्यंगोंसे.....

गगनऊषा—हाय लोकपालों की उस सभामें प्रभु का कैसा अपमान हुआ ! लाज के कारण सिर न उठा सके ।

अम्बरप्रभा—हा देवि अदिति ! जब देव पत्नियाँ तुम्हारे चरण छूकर आशीर्वाद पाने आती होंगी और परस्पर तुम्हारी पुत्रवधू के आचरणों की चर्चा करती होंगी, उस समय तुम्हारे हृदय की क्या दशा होती होगी ।

गगनऊषा—आजके तीन वर्ष पहले महादेवी जब मूर्छा और अनिद्रा रोग से पीड़ित हुई थीं.....

अम्बरप्रभा—हाँ जब देव चिकित्सक धन्वन्तरि आये थे...

गगनऊषा—तबसे महादेवी में कुछ ऐसा विचित्र परिवर्तन हुआ है कि समझ में नहीं आता कि यह है कौन ?

अम्बरप्रभा (धीरे से)—रूपरंग, आकार प्रकार सब कुछ तो वाह पर मानों आत्मा ही बदल गई है ।

गगनऊषा—सूर्यलोक निरानन्द हो गया है । सूर्यलोक के स्वामी पत्नी के इस व्यवहार से खिन्न और विरक्त हो कर अधिकतम मुनि-आश्रमों में समय बिता रहे हैं ।

अम्बरप्रभा—आखिर प्रभु दूसरा विवाह क्यों नहीं कर लेते दाम्पत्य जीवन का सुख नष्ट करने वाली ऐसी पत्नी से

गगनऊषा—और ये कोमल कुसुम से बच्चे..... !

[छायासंज्ञा का प्रवेश ।]

[रोष के कारण उसके अधर फड़क रहे हैं और नथुने फूल रहे हैं । प्रतिहिंसा और क्रोध के स्फुलिंग लाल-लाल नेत्रों से छिटक रहे हैं ।]

छाया (तीव्र स्वर में)—तुच्छ दासियो ! तुम अपने प्रभु व दूसरा विवाह कराओगी.... (विकट अट्टहास करके)—रोक को रहा है—क्यों अपने जीवन के इस स्वर्णयुग को तपोवन में काटने व सोच रहे हैं ? वह दिन भूल गये जब नवविवाहिता संज्ञा तारे गिन गिनकर रात काटा करती थी और तुम्हारे प्रभु को उसका म रखने के लिए कुछ क्षणों का अवकाश नहीं मिलता था । अब ज उन्हें स्वयं कामदेव पीड़ा देता है और मुझे अवकाश नहीं मिलता तो तपोवन सूझ रहा है । [व्यंग से हँसती है ।]

गगनऊषा—देवि ! पति से बदला लेना दिव्य नारियों का धर्म नहीं

छाया—तू मुझे नारी-धर्म सिखलानेवाली कौन ?

अम्बरप्रभा—महादेवी !....

छाया—तू तो अपने स्वामी का दूसरा विवाह करना चाहती न—ला तेरे स्वामी का मार्ग निष्कण्टक कर दूँ ।—(दोनों बच्चों व

पास बुलाकर) — इधर आओ दोनों — [दोनों बच्चे डरते हुए आते हैं.... हाथ में पानी लेकर दोनों के ऊपर छिड़क कर] — मेरी दिव्य शक्तियों के प्रभाव से तुम अभी इस क्षण दिव्य शरीर त्यागकर मानवलोक में जन्म लो — यमुना, तू नदी बनकर मर्त्यलोक में बह और यम, तू नरक में गिर !

[तत्काल दोनों बच्चे निश्चेष्ट होकर गिर पड़ते हैं ।]

अम्बरप्रभा और गगनऊषा (काँपकर चीखते हुए) — ओह ! अनर्थ, महा अनर्थ ! तुम हमारी स्वामिनी नहीं पिशाचिनी हो, आसुरी हो.... (रोते हुए).... हा प्रभु विवस्वान् तुम्हारे लाड़लों की यह दशा, सो भी स्वयं उनकी जन्मदात्री के द्वारा !

छायासंज्ञा (तिरस्कार की दृष्टि से देखती हुई) — जाओ, यह रोना बन्द करके अपने स्वामी को सूचना दो कि संज्ञा का प्रतिशोध पूरा हो गया है । मैंने संज्ञा और सूर्य के प्रणय के प्रतीक ये बालक भी इस लोक से विदा कर दिये । अब वे स्वतन्त्र हैं । चाहे जिस नयी स्वयंवरा से गठबन्धन कर सकते हैं ।

[जाती है ।]

[गगनऊषा और अम्बरप्रभा विलाप करती हैं । उनके रुदन की ध्वनि गवाक्षों और वातायनों से निकल कर आदित्य भवन के प्रस्तरकक्षों में गूँज उठती है ।

लोकपाल भगवान् विवस्वान् का प्रवेश । उनके आते ही रंगमंच प्रकाशवान् हो जाता है । उनके अंग-अंग से प्रकाश की किरणें फूट रही हैं । यहाँ तक कि कुछ क्षणों तक उनकी ओर एकटक देखना असंभव है । वे तेजोराशि और देव-सौन्दर्य के प्रतीक हैं, श्वेतरत्नों का मुकुट धारण किये हैं तथा उनके उन्नत स्कन्धों पर श्वेत रजत खचित उत्तरीय है । उनकी ऊपर उठी हुई, नासिका, प्रदीप्त गौर वर्ण, किंचित् लालिमापूर्ण नेत्रों से असह्य प्रताप और प्रचण्ड तेजस्विता झलकती है । गति में शासन का गर्व है । इस समय वे अन्यमनस्क और कुछ खिन्न दिखाई देते हैं ।]

विवस्वान् (कुछ सोचते हुए)—यह रोदन-ध्वनि कहाँ से आ रही है ? मेरे अन्तःपुर से गृहश्री तो मानो विदा हो ही गयी है । गृहजीवन का सौख्य तो न जाने कहाँ विदा हो गया । सब जगह मानो विषाद और प्रतिशोध का धुआँ छा रहा है ।

[अचानक कुमार यम और कुमारी यमुना के मृत-शरीरों पर दृष्टि पड़ती है ।]

(विचलित होकर) अरे ! यह कैसा अनभ्र वज्रपात...!

गगनऊषा (रोते हुए भगवान् विवस्वान् के चरणों पर गिरकर)—
देव ! महादेवी के कोपानल में आदित्यवंश की आशा और मनोरथ जलकर भस्म हो गये ।

अम्बरप्रभा—प्रभो ! महादेवी ने कहा है—‘मेरे और आपके प्रणय के स्मृतिचिन्ह ये शिशु ही थे । अब ये इस लोक से विदा हो गये । हम दोनों अब परिणय की बेड़ियाँ तोड़ने में स्वतंत्र हैं ।

विवस्वान् (आश्चर्य के स्वर में स्वगत)—असम्भव ! एक स्त्री, अपने पति से प्रतिशोध लेने के लिये अपनी सन्तान की हत्या करे !!
....(प्रकट)—भद्रे ! शोक न करो । यह सूर्यलोक है, मर्त्यलोक नहीं कि प्राणी पचास साल में ही बालक, युवा और वृद्ध होकर काल के गाल में समा जाय और कूपमंडूक की तरह लोग मानव-शरीर को विश्वकर्त्ता की सर्वश्रेष्ठ कृति समझते रहें । यहाँ जीव, कल्पान्त आयु लेकर आता है । अकाल मृत्यु अगर इस तरह सूर्यलोक में घुसने लगी तो मैं लोकपालेश्वर कैसा ? जाओ, अच्छोद-सरोवर के जल में इनके शरीर सुरक्षित करो । शापान्त होते ही ये इन्हीं शरीरों से उठ खड़े होंगे और हमारे नेत्रों को आह्लादित करेंगे ।

[शोक में डूबी हुई दोनों दिव्याङ्गनाएँ कुमार और कुमारी के शरीर उठाकर जाती हैं । विकल अवस्थामें विवस्वान् सिंहासनपर बैठ जाते हैं।]

विवस्वान्—जन्मदात्री जननी अपनी स्नेहलालिता सन्तान की हत्या करे । यह क्या रहस्य है !—यह व्यवहार तो हिंसक पशुओं में भी देखने में नहीं आता...पर संज्ञा तो ऐसी न थी । वह प्रेममयी

जिसने मुझे पाने के लिये बारह दिव्यवर्षों तक तप किया था, जिस प्रेमरस में डूबी हुई प्रणयपत्रिका लिये हुए नित्य ही दूत लोकपा की सभा में खड़े रहते थे, वही अब ऐसी क्रूर और पाषाणहृद हो जाय?... (खड़े होकर)—सुलझाना ही होगा यह रहस्य—(प्रतिह को बुलाकर)—जाओ महादेवी को भेज दो ।

[छाया का प्रवेश । उसका मुख किसी अव्यक्त प्रसन्नता चमक रहा है]

छाया (प्रकट)—आर्यपुत्र की जय हो ! मैं अब आपके कारागार से मुक्त होना चाहती हूँ, मुझे आज्ञा दी जाय ।

विवस्वान् (अस्फुट क्रोध से अधरदंशन करते हुए)—पापा मेरे कुलगौरव को नष्ट करनेवाली, मेरे आनन्द-वन को भ करनेवाली दावाग्नि ! जाने से पहले यह बता जा कि तू कौन है किसलिये तू मेरे मानस की सुख-शान्ति छीन रही है ?

छाया (हँसकर)—देव ! इतने अधीर न हों, मैं आपकी व उपेक्षिता संज्ञा हूँ ।

विवस्वान्—वया तुम मेरी पत्नी हो !..वही प्रणयिनी जिसने मे प्रेम पाने के लिये कठोर तप से अपना शरीर झुलसा डाला था...

छाया—मैं आपके पत्नी-पद की भिखारिणी नहीं हूँ ।

विवस्वान्—वया तुम मेरे इन बच्चों की माँ हो जो तुम्हारी कोपाग्नि में पतङ्गों की तरह गिरकर भस्म हो गये हैं ?

छाया—मुझे संसार के किसी भी बच्चे से तनिक भी मोह नहीं ।

विवस्वान्—तब तुम, मेरी प्रिया, संज्ञा नहीं; विश्वकर्मा की कोमलाङ्गी कन्या, वह स्नेह, करुणा और कला की देवी तुम कद नहीं हो सकती, वह तो अपने बच्चों को पुष्पहिंडोले पर सुलाने भी डरती थी कि कही चोट न लग जाय—क्रूरकर्म ! बताओ कौन हो ?—(ध्यान-दृष्टि से देखकर)—संज्ञा के छद्मवेश में यह क दानवी मुझे छल रही है !—(कुछ क्षण बाद नहीं दिखाई देती ; आश्चर्य ! मेरी दिव्य शक्तियाँ भी यहाँ कुछ काम नहीं दे रहीं....!

छाया—मैं संज्ञा हूँ, मात्र नारी—न माता, न पत्नी, न प्रणयिनी। अगर पुरुष मेरे हृदय के साथ खिलवाड़ करेगा तो मैं उसके सुख के संसार को चूर-चूर कर सकती हूँ। [जाना चाहती है]

विवस्वान् (उसका हाथ पकड़ कर)—रुको ! तुम इस तरह नहीं जा सकतीं, तुम्हें बताना ही होगा कि.....

[छाया हाथ छुड़ाकर जाती है।]

[कंचुकी का प्रवेश।]

कंचुकी—देव ! शैलपुत्री, सती-शिरोमणि शंकर-प्रिया भगवती उमा आपसे मिलने पधारी है।

विवस्वान् (ससम्भ्रम)—जाओ ! सम्मान के साथ उन्हें मार्ग दिखाओ।

[कंचुकी जाता है।]

(नेपथ्य से)—देवि ! इधर आइये—

[भगवती उमा का प्रवेश—

उनके सौन्दर्य, सहज गाम्भीर्य और शालीनता का वर्णन करना सम्भव नहीं है। कालिदास से लेकर तुलसीदास तक सभी कवि असफल प्रयत्न कर चुके हैं। उनके पीछे मलिन वस्त्रों में लिपटी हुई एक अवगुण्ठनवती नारी है।]

विवस्वान् (प्रत्युत्थान देकर)—भगवती ! प्रणाम करता हूँ। त्रैलोक्य के आश्रय, योगियों के आदिगुरु भगवान् शंकर सकुशल तो हैं न ?

भगवती उमा—मित्र के दुःख से दुखी हूँ, आदित्य देव ! आज मैं आपके पास एक उलाहना लेकर आयी हूँ...

विवस्वान् (साग्रह)—आज्ञा दें देवि !

भगवती उमा—आदित्य ! देवपुरुष को लोक-जीवन के कार्य में इतना व्यस्त न रहना चाहिये कि प्रेयसी पत्नी के लिये कुछ क्षणों का अवकाश भी न निकल सके। क्या राजनीति प्रणय और वात्सल्य की कोमल कल्पना.... ?

विवस्वान् (आश्चर्य से)—यह आपसे किसने कहा कि राजनीति के लिये प्रणय और वात्सल्य को ठुकरा रहा हूँ ।

उमा—आपकी पत्नी संज्ञा तीन दिव्य वर्षों से कैलाश पर तप कर रही है और आपने यह भी उचित न समझा कि एक बार जाकर उस वियोगिनी को सान्त्वना दे आऊँ ।

विवस्वान् (विस्मित-से)—संज्ञा वियोगिनी होकर तप कर रही है... नहीं देवि ! आपको भ्रम है, वह तो विवाह के बाद एक क्षण भी आदित्य-भवन से बाहर नहीं गयी ।

[उमा क्रोध से अवगुण्ठनवती नारी का अवगुण्ठन उतार कर फेंक देती है । संज्ञा दिखाई देती है । उसका गौर-वर्ण पंचाग्नि तप से झुलस कर काला पड़ गया है । आँखों के चारों ओर गड्ढे स्पष्ट दिखाई देते हैं, रूखे और उलझे हुए बालों की एक वेणी कंधे पर लटक रही है । ओठ पपड़ाये हुए, वेदना और विषाद की मूर्ति । उसकी आँखों में एक विचित्र भाव है जिससे पता चलता है वह किसीको पहचान नहीं रही है ।]

विवस्वान्—मेरी पत्नी, मेरी प्राणेश्वरी की यह दशा !...

[दोनों हाथों में मुँह छिपा लेते हैं ।]

उमा—आज से तीन वर्ष पहले जब मैं प्रभु शंकर के मुखचन्द्र से झरती हुई कथासुधा का पान कर रही थी....

विवस्वान् (उद्वेग से)—फिर क्या हुआ ?

उमा—यह मेरी बालसखी मेरे पास आई । कहने लगी—भगवती महाशक्ति ने, चराचर में व्याप्त अव्यक्त चेतना ने मुझे आज्ञा दी है—मैं तप करूँ.... ।

विवस्वान्—फिर.....?

उमा—तब से न इसे यह याद है कि मैं विश्वकर्मा की पुत्री हूँ—न लोकपाल विवस्वान् की पत्नी हूँ अथवा सूर्यलोक की स्वामिनी हूँ । यहाँ तक कि अपना नाम संज्ञा भी याद नहीं है ।

विवस्वान्—यह इन्द्रजाल है या स्वप्न....!

उमा—नहीं कह सकती । पर अपने को भूली हुई यह विरहिणी जब कुररी की तरह विलाप करती थी तो उदासीनों के गुरु प्रभु पुरारि के नेत्रों में भी जल आता था और वे कैलाश की किसी सुदूर उपत्यका में समाधि लगाने चले जाते थे ।

विवस्वान्—देवि बस करें !

उमा—इसके पश्चात् कल प्रभु को समाधि अवस्था में भगवती महाशक्ति का आदेश हुआ—इसे इसके स्वामी के पास ले जाओ । शापान्त अवसर आ गया है, सो इसे लेकर आपके पास उपस्थित हुई हूँ । आप जो उचित समझें सो करें ।

विवस्वान्—देवि तनिक ठहरें । आपको मैं भी कुछ आश्चर्य-जनक वस्तु दिखाना चाहता हूँ ।

[जाते हैं—थोड़ी देर में छायासंज्ञा का हाथ पकड़कर प्रवेश ।]

विवस्वान्—यह कौन है, देवि शैलपुत्री ! पहचानिये.....

[भगवती उमा अपने सामने एक ही नारी को दो रूपों में देखकर आश्चर्य चकित रह जाती हैं ।]

विवस्वान्—महाशक्ति की महामाया ने हम देवों को भी मोह में डाल रखा है । मैं लोकपालों का स्वामी होकर अपनी पत्नी को पहचानने में असमर्थ हो रहा हूँ । यह कैसी विडम्बना है !

छायासंज्ञा—पत्नी स्नेह और आत्मीयता से पहचानी जाती है देव ! उपेक्षा और अहंकार से नहीं—

विवस्वान्—एक ही नारी के ये दो रूप—एक प्रतिहिंसा, प्रतिशोध और उच्छ्वंखलताका मानो उन्मत्तरूप...!

उमा—और दूसरा विरह और करुणासागर में मुक्ता की भाँति डूबा हुआ ।

विवस्वान्—अपने अस्तित्व को भूली हुई, एक भटकी हुई आत्मा-सी, और दूसरी अपने चिरन्तर रूप को चुनौती देती हुई भयंकर दानवी सी, जिसका मेरी चिरपरिचित पत्नी से कोई सामंजस्य नहीं । आखिर इन दोनों में से मेरी प्रेयसी संज्ञा कौन है ?

उमा—खोजिये, जिसमें सच्चा नारीहृदय मिले वही आपकी पत्नी है।

विवस्वान्—पर कैसे खोजूँ ? इन दोनों संज्ञाओं में मुझे सच्ची नारी-आत्मा के दर्शन तो नहीं हो रहे हैं।

[भगवान् शिवका प्रवेश—कर्पूरधवल मस्तक पर अर्द्धचन्द्र ।]

भगवान् शिव (हंसते हुए)—मित्र, अभी से निराश हो गये। खोजो ! उस चिरन्तन नारी-आत्मा को खोजो। वह प्रेममयी तुम्हारी उपेक्षा और अवहेलना से थककर इन्हीं शरीरों में सो गई है—तुम्हारे मृदु सम्बोधन से तुम्हारे प्रणय की प्रभाती सुनकर अभी अलसाती हुई जग जायगी...

[आकाशवाणी सुनाई पड़ती है ।]

—‘हे महादेव देवाधिदेव ! शापान्त अवसर आ गया है। इन दोनों नारी शरीरों पर अभिमन्त्रित जल छिड़किये।’

[भगवान् शिव कमण्डलु से जल लेकर छिड़कते हैं। छाया और संज्ञा दोनों संज्ञाहीन होकर गिर पड़ती हैं। सब उद्विग्न और चिन्तित होकर देखते हैं—धीरे-धीरे पृथ्वी पर पड़ी हुई छाया का शरीर अस्पष्ट और धुंधला पड़ने लगता है और क्रमशः धूम्र का रूप रखकर ऊपर उठने लगता है। कुछ क्षणों तक उसमें नारी शरीर की अस्पष्ट रूपरेखायें दिखाई पड़ती हैं और फिर अन्तरिक्ष में केवल धूम्र ही दिखाई देने लगा है। मूर्छित संज्ञा के मुँह से धीरे-धीरे अस्फुट ध्वनियाँ निकलने लगती हैं जो क्रमशः हिचकियों और सिसकियों में बदलने लगती हैं।—‘हा आर्यपुत्र ! हा मेरे प्रभु विवस्वान् तुम कहाँ हो’—ये स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। भगवान् सूर्य संज्ञा का सिर अपनी गोद में रख लेते हैं। उनकी आँखों में पश्चात्ताप के आँसू झलक रहे हैं। अचानक चारों ओर फैला हुआ धूम्र सिमट कर संज्ञा की ओर आने लगता है। स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ती है।]

हे देवो ! मैं संज्ञा के अन्तस्तल में छिपी हुई विनाशकारिणी आसुरी शक्ति हूँ। आप लोग मेरा मार्ग छोड़ें—मैं फिर इसके मानस के अतल-तल में छिपना चाहती हूँ।’

भगवती उमा—इस तपपूत शरीर में अब तेरा निवास न हो सकेगा। तू जा, ओ जीव की दुर्भाविनाओं, वासनाओं, अतृप्त पिपासाओं की स्रोतस्विनी ! संज्ञा के इस पावन शरीर में शुद्ध देवत्व का ही संस्थान हो सकेगा।

(ध्वनि)—तब मैं कहाँ जाऊँ ?

उमा—उस मानवलोक में जहाँ नारी और पुरुष अपने-अपने अहंकार और अन्ध स्वार्थों पर एक दूसरे की बलि देने को सदा प्रस्तुत हैं—आसुरी ! इस दिव्य सूर्यलोक में प्रणय, वात्सल्य, क्षमा, करुणा और आनन्द का राज्य होगा।

[धुआँ धीरे-धीरे अन्तर्हित हो जाता है। संज्ञा की आँखें खुल जाती हैं और अपने सिर को भगवान् सूर्य की गोद में देखकर लज्जित होकर खड़ी हो जाती है और अपने चारों ओर भगवान् शिव और भगवती उमा को देखकर आश्चर्य चकित हो जाती है।]

भगवती उमा—सखी ! बधाई है। आज तुम तीन साल के लम्बे रोग से मुक्त होकर अपने स्वामी से मिल रही हो।

भगवान् सूर्य—देवि ! मेरी उपेक्षा से तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा....

भगवान् शिव—तपस्या से ही हम देवताओं की दैवी शक्तियाँ बढ़ती हैं...

संज्ञा (स्नेह से सूर्य की ओर देखकर)—आर्यपुत्र ! मेरे लाडले शिशु कहाँ हैं ?

विश्वान् (कुछ सोच में पड़कर)—देवि.... [रुक जाते हैं।]

[हर्ष के आवेग में गोद में कुमार और कुमारी को लेकर गगनऊषा और अम्बरप्रभा का नाचते हुए प्रवेश।]

ऊषा—प्रभो, बधाई है। महामाया की अनुकम्पा ने अभी-अभी कुमार और कुमारी को पुनर्जीवन देकर हमें अनुग्रहीत किया है।

[संज्ञा, ऊषा और प्रभा की गोद से बच्चों को लेकर हृदय से लगा लेती है।]

भगवान् सूर्य—गठ सब देवी शैलपुत्री और प्रभु पुरारि की कृपा है।

रश्मिमालिनी (प्रवेश करके)—देव ! महामाता अदिति का सन्देश आया है—‘मैंने दिव्य दृष्टि से बधू संज्ञा की पीड़ा का कारण जान लिया है। पितामह विधाता का आदेश है बधू संज्ञा सूर्यलोक के ग्राह्य ताप को सहने में अगमर्थ है, अतः मैं आदित्य और संज्ञा के रहने के लिये ज्योत्स्ना-धाम नाम का नित्यलोक देता हूँ, जहाँ श्वेत प्रासाद-पृष्ठ पर निरन्तर शीतल चन्द्रकिरणें गिरती हैं और जहाँ के अमृत-सरोवरों में स्नान कर लेने से शरीर पर ताप का प्रभाव नहीं पड़ता।’

संज्ञा—महामाता के स्नेहसे मैं कृतार्थ हुई।

विवस्वान्—तब देवि, हम लोग कल ही उस लोक में सपरिजन रहने के लिए प्रस्थान कर देंगे।

रश्मि—महामाता ने कहा है—‘अब आगामी वर्ष में आदित्य का कार्य भार सर्वदेवमय विष्णु के अवतार उपेन्द्र सँभाल लेंगे। तुम निश्चिन्त हो कर बधू के खिन्न चित्त को प्रसन्न करो।’

विवस्वान्—ओह ! माता पिता की कैसी स्नेहवर्षा हुई है।

भगवती उमा (संज्ञा को गले लगाकर)—ओह ! आज कैसी आनन्दमयी घड़ी आई है, जो मैं अपनी प्रिय सखी को रोगमुक्त और सुखी देख रही हूँ।

भगवान् शिव—चलो देवि, चलें। आनन्द के अतिरेक में चिरकाल से बिछुड़े हुए इन प्रेमियों को एकान्त-मिलन का आनन्द उठाने दें। आद्या शक्ति से प्रार्थना है कि इस दिव्यलोक में कभी किसी

प्रणयतृषिता पत्नी का हृदयपुष्प किसी पति के उपेक्षापूर्ण पदाधात से न कुचला जाय ।

[रश्मि मालिनी, गगनऊषा, अम्बरप्रभा, दिवा, आभा, आदि सूर्यलोक की कन्याओं का प्रवेश । वे थिरकती हुई भगवती उमा और भगवान् शिव को घेर लेती हैं ।]

(कोलाहल)—‘अभी न जायें देवि । हमारी महादेवी सदा आपके और प्रभु शंकर के नृत्य की प्रशंसा करती रहती थीं । आज हम देवी उमा के लास्य नृत्य से ही यह आनन्दोत्सव मनायेंगी ।

भगवान् शिव—उचित अनुरोध है देवि । यह घड़ी और यह सम्मिलन-आनन्द बार-बार न मिलेगा । नृत्य और संगीत की आनन्द-सरिता में चिरसंचित विषाद को बहा दें....

[भगवान् सूर्य शिशुओं को गोद में लेकर रत्न सिंहासन पर बैठ जाते हैं । संज्ञा अपनी वीणा संभालती है । शिव और उमा, सूर्यलोक की कन्याओं के साथ नृत्य करते हैं—दिव्य आलोक में सनातन नारी और सनातन पुरुष, ब्रह्म और माया, प्रकृति और पुरुष चिरन्तन विरह और मिलन के पारस्परिक आँखमिचौनी के खेल खेलते दिखाई देते हैं ।]

[यवनिका पतन]

शेमित्रा

पूर्व कथा

संसार के मानचित्र में आजकल जिस स्थान को मैसेपोटामिया का मैदान कहा जाता है, ई० पू० तीसरी सहस्राब्दी में वहाँ महान् असुर संस्कृति अपने विकास पर थी। भारतीय संस्कृत पुराणों में जिन्हें असुर या राक्षस कहा जाता है, वे वास्तव में मध्य-एशिया की एक महान् सुसंस्कृत जाति के मनुष्य थे। असीरी-बेबीलोनी सभ्यता के विषय में गवेषणाओं द्वारा काफ़ी प्रकाश डाला जा चुका है। असुर आर्यों की अपेक्षा अधिक प्राचीन और संस्कृत थे। जब सरल और अर्द्ध-यायावर जाति के आर्य जन उनके सम्पर्क में आये तो वे उनके प्रभाव से अछूते न रह सके। हमारी आधुनिक भारतीय सभ्यता के बहुत से उपादानों का मूल असुर संस्कृति में पाया जा सकता है।

तुग्रा (टाइग्रिस) और भद्रा (यूफ्रेटिस) नदियों की मध्यवर्ती भूमि पर उनका शक्तिशाली असुर जनपद बसा हुआ था। उरस्, निनवा, बाबुल और असुर (असीरिया) में इनके नगर और गढ़ थे। असुर सभ्य, क्रूर और अच्छे योद्धा थे। लिखने की कला का विकास सर्वप्रथम उन्होंने किया था। वे कच्ची मिट्टी की ईंटों पर कीलों से खोद कर अपनी लिपि अंकित करते थे। वे देवी ओसेस् (ऊषा), अनलिल (अनिल) और महान् असुर वरुण (असुर मेघस् अथवा अहुर मजदाओ) की पूजा करते थे।

शेमित्रा इस असुर साम्राज्य के प्रतापी सम्राट् वृषपर्वा की पुत्री थी। वृषपर्वा स्वयं शमी वंश (सेमेटिक) का असुर था। महाभारत और पुराणों में शेमित्रा का शर्मिष्ठा नाम दिया गया है, जो किसी असुर-भावीय शब्द का आर्योकरण मालूम पड़ता है। इसी लिए मैंने इस नाम को बदलने का साहस किया है—‘शेमित्रा’ अर्थात् शमी-वंश की कन्या।

जिसे आजकल ‘फारस’ या ईरान कहो हैं, वह पहले ‘पर्शु’ देश के नाम से विख्यात था।

पर्शु में दो जन निवास करते थे—उत्तर में मद और दक्षिण में देवस्। देवों के साथ असुरों का निरन्तर युद्ध चलता था। पुराण बाह्यमय देवासुर-संग्राम के वर्णन से भरा पड़ा है। पूर्व में कम्बोज (आधुनिक अफगानिस्तान) और सप्तसिंधु (पंजाब) में आर्य जनपद बस रहे थे। आर्य ऋषि और राजन्य-गण युद्ध में कभी देवों का साथ देते थे कभी असुरों का। गान्धार में नहुष का पुत्र ययाति जो सोमवंशी आर्य था, राज्य करता था। उसकी शक्ति का प्रभाव सप्तसिन्धु के अन्तिम छोर तक था। असुरेन्द्र वृषपर्वा ने युद्ध में अपनी शक्ति बढ़ करने के लिए प्रचण्ड तेजस्वी, युद्धविद्यानिपुण भृगुवंशी शुक्र (महर्षि उशनस्) को बुलाकर अपना पुरोहित बनाया। शुक्राचार्य की युवती कन्या देवयानी उनके साथ गई। उसे अपने आर्यत्व का, वर्ण का और भृगुओं की पुत्री होने का अभिमान था। शेमित्रा भी रूपवती और हठीली थी। उसे भी असुर सम्राट् की एकमात्र पुत्री होने का गर्व था। दोनों में अच्छी तरह पट न सकी। देवयानी ने अपने पिता को उत्तेजित किया और असुरेन्द्र का पौरोहित्य छोड़ कर सप्तसिंधु जाने को कहा। अन्त में शेमित्रा को आजन्म दासी बना कर देवयानी का प्रतिशोध शान्त होता है। देवयानी का विवाह सोमवंशी राजा ययाति से हुआ। शेमित्रा भी उसकी दासी के रूप में आर्य कुल में आई।

ययाति ने उसके रूप और आभिजात्य से प्रभावित होकर उससे गुप्त परिणय कर लिया । पर उसे भगवान् शुक्र और देवयानी का भय था । शेमित्रा के प्रति उसके आकर्षण का कारण असुरेन्द्र का विशाल राज्य भी था । शेमित्रा के तीन पुत्र हुए थे—द्रुह्यु, अनु और पुरु । यह पुरु ही प्रसिद्ध कुरुवंश का आदिपुरुष हुआ । ययाति के देवयानी से दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु । पिता के शाप से अभिशप्त होकर ये अपने पिता का राज्य न पा सके । तुर्वसु मध्य-एशिया के उस स्थान में बस गया जो आज-कल तुर्किस्तान कहा जाता है । संभवतः वही तुर्क जाति का आदिपुरुष था । यदु ने मथुरा जनपद बसाया, वह यदु-वंश का प्रवर्तक हुआ ।

इस नाटक का आधार श्रीमद्भागवत महापुराण है ।

पात्र

पुरुष पात्र :

ययाति : सप्तसिन्धु और कम्बोज जनपद का सोमवंशी राजा ।

महर्षि शुक्र : असुर सम्राट् के भृगुवंशी आर्य पुरोहित ।

तुष्ट्ररथ : एक असुर महारथी ।

उद्यानपाल, नगरपाल, आदि ।

नारी पात्र :

शेमित्रा : असुर जनपद के सम्राट् वृषपर्वा की पुत्री और
आर्यसम्राट् ययाति की अपरिणीता प्रेयसी ।

देवयानी : असुरों के महापुरोहित भार्गव ऋषि शुक्र की कन्या
और ययाति की विवाहिता पत्नी ।

रोचना : शेमित्रा की दूर के सम्बन्ध की बहिन ।

इडविडा : शेमित्रा की धात्री ।

काल :

ई० पू० २५०० वर्ष—प्राग्वैदिक काल ।

स्थान :

कम्बोज जनपद ।

[कम्बोज जनपद के सोमवंशी राजा ययाति की राजधानी सोमावती में राजभवन की प्रमोद-वाटिका । उपवन की पृष्ठभूमि में लकड़ी का बना हुआ विशाल राजमहल दिखाई दे रहा है । उपवन में लता और वृक्षों की ओट में दो कुटीर दिखाई दे रहे हैं । कुटीर के द्वार पर लटकती हुई लताओं को हटा कर निकलती हुई एक युवती दिखाई देती है । ऐसी तरुणी, जो किसी भी लवयुवक की स्वप्नप्रिया बन सकती है—तन्वी, प्रिया और दर्शनीय । उज्ज्वल रंग, बड़ी-बड़ी नीलाभ आँखें और रसीले अधर जो मानों मुस्कान की किरणें बिखेरने के लिये बने थे । उसके सुनहले बाल सिर के पीछे दो जूड़ों के रूप में कानों के ऊपर लटक रहे हैं । वह रोएँदार ऊनी वस्त्र का नीला कंचुक पहने है । उसके एक हाथ में लोहे की एक कील है और दूसरे हाथ में काष्ठ की एक थाली, जिसमें गीली मिट्टी की बनी छोटी-छोटी ईंटें हैं; जिन पर उस काल में असुर लिपि अंकित की जाती थी । उसके साथ एक दुर्दान्त योद्धा आता है । वह लोहे के कवच और शिरस्त्राण पहने है । दाएँ हाथ में भाला है । योद्धा की मुखाकृति क्रूर और हिंस्र है । वह एक असुर वीर है । नाम तुषरथ है । तरुणी एक वृक्ष की छाया में सामान रख देती है ।]

तुषरथ—पशु देश में देवों और असुरों का युद्ध समाप्त हो रहा था, सोचा स्वदेश लौटने से पहले असुरों की जनपद कल्याणी के दर्शन करता चलूँ ।

शेमित्रा (पूर्वोक्त तरुणी—वेदना के भार से नीलाभ नेत्र झुका कर)---असुरों की जनपद कल्याणी ?

तुष्यरथ—हाँ जिसने अपने जीवन और स्वाधीनता का मोल देकर असुरों का सम्मान खरीदा। जनपद कल्याणी कहूँ या प्लुथेव्य मातेर्स (पृथ्वीमाता) कहूँ, एक ही बात है। युद्ध के पश्चात् तुम्रा के तट पर पर मंदिर बनेगे, जिनमें तुम असुरों की कुलदेवी बन कर बैठोगी।

शेमित्रा (लज्जित होकर)---ऐसा मैं ने क्या किया है रथी, जो असुरों की कोई भी कुलकन्या न करती ?

तुष्यरथ—सुनोगी, स्वसृ तुमने क्या किया है ? असुरों के महा-तेजस्वी पुरज्जधितों और सम्राटों के बीच में बढ़ती हुई खाई को तुम्हारे बलिदान ने पाट दिया। भृगुश्रेष्ठ शुक्र असुर वंश को छोड़ कर सप्तसिंधु लौट जाते, असुरों के जनपद में पशु के देवों की पताकाएँ फहरातीं, अगर तुम अपनी स्वाधीनता का मूल्य दे कर भार्गव ऋषि की कृपा मोल न लेतीं—

शेमित्रा (व्यग्रता पूर्वक)---रथी ! कुछ और बताओ न ? साठ लम्बे वर्षों तक, सवितृ का प्रकाशमान रथचक्र आकाश मार्ग में बिना रुके चक्कर काटता रहा। असुर और देव प्रजा युद्धों में छीजती रही। अब युद्ध में विजयी होकर असुर प्रजा तुम्रा और भद्रा के तट पर प्लुथेव्य मातेर्स से अन्नदान मांगेगी न ? असुरों के भांडार गृह फिर से अन्नसम्पदा से भर जायेंगे न ?

तुष्यरथ—अहुर महान् की कृपा हुई तो ?

शेमित्रा—वरुण ने असुरों को भृगुओं जैसे तेजस्वी पुरज्जधित दिये हैं, नहीं तो देवों को कौन जीत सकता था !

तुष्यरथ—मैं यह नहीं मानता। पशु के उत्तर में रहने वाले मद हमसे मिल गये। असुरों और मदोंके संगठन के सामने बेचारे

देव कर ही क्या सकते थे। फिर साठ वर्षों तक जो युद्ध चले ?
... देवों और असुरों के अंगों का एक-एक जोड़ ढीला पड़ गया,
युद्ध में एक न एक पक्ष तो गिरेगा ही।

शेमित्रा—देव ही गिरे, यह भी भृगुश्रेष्ठ की कृपा है।

तुषरथ—असुरों के गणपति भृगुश्रेष्ठ से प्रसन्न नहीं है। सेना
में उनके विरुद्ध क्रोध की लहर फैल रही है। भार्गवी देवयानी
तुम्हें दासी बना कर यहाँ लाई, यह अच्छा नहीं हुआ। अब तक
युद्ध के भय से इन पुरोहितों का अहंकार और दर्प असुर सह रहे
थे, अब जीत के बाद... असुरों की कुलकन्या के अपमान का उत्तर
देंगे।

शेमित्रा (कांपकर)—नहीं नहीं, यह न कहना। तुम्हें वरुण की
शपथ है। पुरज्जधित की शक्ति से ही असुरों की विजय है।

तुषरथ—दारिका हो न ? तुम क्या जानो इन दाव-पेंचों को।

शेमित्रा—जानना भी नहीं चाहती रथी—मेरे प्रतापी पेतर्स
महाराज वृषपर्वा ने और मातेर्स ने मुझे कोई सन्देश नहीं भेजा ?
(आँखों में आँसू भर कर) भूल गये मुझे !

तुषरथ—किस लिये पर्शु से कम्बोज दौड़ा आया हूँ ! महाराज
ने मुझे बुला कर कहा—‘भद्र ! युद्ध तो समाप्त हुआ। जाकर मेरी
शमित्रा को देख आओ। शमी वंश का कोई भी तेजवान् असुर
नवयुवक मेरी कन्या को पा कर धन्य हो जाता। ऐसी पुत्री थी
मेरी—तुम जाकर देखो आर्य सम्राट् ययाति मेरी कन्या को सम्मान
के साथ रख रहा है न—या नारी का सम्मान सिखाने असुर वाहिनी
को कम्बोज जाना पड़ेगा।

शेमित्रा—क्रुद्ध न हो रथी। आर्यों के महाराज उदार हैं,
वे नारी के सम्मान की रक्षा करने में ही अपना गौरव समझते हैं।

तुषरथ—तब ठीक है। मैंने समझा भृगुओं की तरह..

शेमित्रा—भृगुओं का सा अहंकार सोमवंशियों में नहं
(आग्रह के स्वर में)—रथी ! मेरा भी एक अनुरोध है !

तुषरथ (तीक्ष्ण स्वर में)—पुरु, द्रुह्य और अनु को—तुम्हारे पुत्रों को—असुर जनपद ले जाऊँ ? तुम कहती हो, आर्य सम्राट् तुम्हारा सम्मान करते हैं—और तुम अपने पुत्रों को मेरे साथ भोजना चाहती हो—कि वे सुरक्षित रहें । विचित्र उलझन है ?

शेमित्रा (रहस्य भरे स्वर में)—रथी ! तुम नहीं जानते आर्य देव कैसे हैं ? मुझे भार्गवी देवयानी के कुचक्र का भय है । महाराज ने उस से छिप कर मुझे स्वीकार किया है, अगर देवयानी की क्रूर दृष्टि मेरे पुत्रों पर पड़ गई तो...मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ । तुम्हें उन्हें यहाँ से ले ही जाना होगा ।

तुषरथ (हँस कर)—असुरेन्द्र को भी दौहित्रों की आवश्यकता थी । असुरों का सिंहासन खाली ही पड़ा है । महाराज वृषपर्वा के कोई पुत्र भी नहीं है । भृगुश्रेष्ठ किसी भृगुवंशी को ही असुरेन्द्र का युवराज पद सौंपना चाहते हैं, पर असुर प्रजा नहीं चाहती कि भृगु पुरोहितों के अधिकार में हमारे पूर्वपुरुषों का राज्य जाये ।

शेमित्रा—सोमवंशियों और असुरों का सम्बन्ध उपेक्षणीय नहीं है भद्र !

तुषरथ—मानता हूँ स्वसृ ! पर्शु के पश्चिम में असुर और पूर्व में आर्य मिल कर देवों को कभी सिर न उठाने देंगे । तुम्रा के उत्तर में महाराज का एक दौहित्र, दक्षिण में दूसरा राज्य करेगा, तुम चिन्ता न करो ।

शेमित्रा—कल्पना के रथ अभी से दौड़ाने लगे । मेरे पुत्रक अभी बहुत छोटे हैं ।

तुषरथ—माता से मातामही का दुलार अधिक होता है । असुरों की महारानी दौहित्रों को हृदय से लगा कर रखेंगी, तुम पुत्रों के प्रस्थान की तैयारी करो—मैं उद्यानपाल के पास बैठता हूँ । वायु को भी इस रहस्य का पता न चलेगा, इस तरह ले जाऊँगा पुत्रों को । [जाता है ।]

[शेमित्रा बैठकर कील के द्वारा इंटों पर सन्देश अंकित करती है। कुटी से एक दूसरी युवती निकल कर आती है। उस की भी वही वेशभूषा है। वह शेमित्रा की मौसैरी बहिन रोचना है, उस के अंगों में स्फूर्ति की विद्युत और नेत्रों में प्रज्ञा का तेज है।]

रोचना (मृदु उपालम्भ दे कर)—इतने मनोयोग से अपने आर्यदेव की प्रशस्ति में कोई नई गाथा लिख रही हो, शेमित्रा ?

शेमित्रा—जेमित्रा नहीं, शेमित्रा। महाराज ययाति तो मुझे शर्मिष्ठा कहते हैं।

रोचना—कहते होंगे। मुझसे तो आर्यभाषा बोली नहीं जाती। श की जगह ज ही कह पाती हूँ।

शेमित्रा—तुम्हारा का तट छोड़े पूरे आठ वर्ष बीत गये, तू फिर भी आर्या न बन सकी !

रोचना—आर्यों से असुर किस बात में कम हैं ? मुझे आर्य स्तुषा बनने का मोह नहीं।

शेमित्रा—यहाँ सप्तसिंधु के विश्व समझते हैं—हम असुर बड़े क्रूर और बर्बर हैं।

रोचना (उपेक्षा से)—तरुणी कन्याओं को जन्मदासी बनाने का व्यापार आर्यों में प्रचलित है, असुरों में नहीं। वरुण का कालदंड इन भृगुओं के अभिमान पर पड़े। पुरोहित क्या हुए, सारा असुर प्रदेश इन की दक्षिणा हो गया। (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

शेमित्रा (भयभीत स्वर में)—वृक्षों और लताओं के भी कान होते हैं, रोचना !

रोचना—जानती हूँ भार्गवी के अनुचर यही कही टोह ले रहे होंगे।

शेमित्रा—आर्यदेव की कृपा न होती तो मैं सुषोमा के जल में डूब कर वरुण के तेजवान् लोक में पहुँच गई होती !

रोचना (क्रुद्ध स्वर से)—भार्गवी ने तो तुझे सताने में कोई कसर छोड़ी नहीं। हाँ महाराज ययाति की बात और है ! उशनस् ने तो देवासुर संग्राम में पौरोहित्य कर महाराज वृषपर्वा को अपना दास बना लिया और पुत्री ने राजकन्या को अपनी क्रीतदासी...

शेमित्रा—सब कालगति है। असुरों में असली सत्ता पुरजधितों के हाथ में होती है। फिर देवों के आक्रमण ने तो हमारी कमर ही तोड़ दी। भृगुश्रेष्ठ शुक्र के बिना पेतर्स का काम एक दिन भी नहीं चल सकता। इसी लिये तो रक्त का घूंट पी कर...

रोचना—असुरों की कन्या का अपमान देवी प्लुथेव्य (पृथ्वी) का अपमान है।... (तड़प कर)—असुर प्रजा इसे कभी न पी सकेगी ?

शेमित्रा—आठ वर्ष बीत चुके हैं। देव, असुर, मानव सब वरुण के पाश में बँधे हैं।

रोचना—संग्राम में देव हार रहे हैं। विजय पाते ही असुरों की सेना कम्बोज को घेर लेगी।

शेमित्रा—असुरों और मानवों का क्या वैर...?

रोचना—जिस जनपद में असुरों की राजकन्या दासी की तरह बिके... (क्रोध से काँपती है।)

शेमित्रा (रोचना के कन्धे पर हाथ रख कर)—तो तू देवयानी के कारण महाराज ययाति का सर्वनाश चाहती हैं ? उन महाराज का जिन्होंने मुझ दासी को आर्यसम्राज्ञी से अधिक मान दिया है।

रोचना—पति और पत्नी के दो पथ नहीं होते, शेमित्रा। देवयानी तुझे शत्रु की तरह देखे और महाराज... !

शेमित्रा (विषाद से)—वे मेरे अनु और पुरु के पिता हैं रोचना।

रोचना (आवेश से)—एकान्त में नारी को प्रणय का सप्तवर्ण इन्द्रधनुष दिखाना एक बात है और समाज में प्रतिष्ठा के

11थ उसे अङ्गीकार करना दूसरी बात है। ये जो सम्राट् नित्य
11कर तुझे मन्त्र सुनाते हैं—तुम्हीं मेरे जीवन की प्रेरणा हो, मेरी
11द्रकला हो—ये सब बातें वे यज्ञशाला में खड़े होकर चार महाजनों
11र अपनी सम्राज्ञी के सामने कहें तो जानूँ—कह सकेंगे ?
11 इतना साहस ? (घृणा से) रूप और रस के लोभी ये
11रूप...!

शेमित्रा—वे ऐसे नहीं हैं। रोचना विश्वास करो—जिस दिन
11 महाजनों में खड़े होकर मुझे अस्वीकार करेंगे, उस दिन मैं सुपोमा
11 जल में डूब मरूँगी।

रोचना—विवाहित पुरुष से प्रणय और सुख की आशा ! कहीं
11स्थल के बालू से किसी की प्यास बुझी है ?

शेमित्रा—मैं जानती हूँ। पर इस संसार में उन के सिवा मेरा
11र कौन है ? भार्गवी के कटु वचनों से मेरा हृदय बिधा पड़ा
11। औषधियों के राजा सोम की तरह देदीप्यमान उनके मुख को
11ख पाती हूँ, बस इसी सुख की आशा में जीवन का यह भार ढो
11ही हूँ। (उसके विशाल नेत्रों में आँसू डबडबा आते हैं और वर्षा
11 नी बूंदों की तरह झरने लगते हैं। वह अपनी हथेलियों में मुख
11छिपा लेती है।)

रोचना (कोमल स्वर से)—तेरी इस एकनिष्ठा के सामने मैं
11र जाती हूँ। पगली ! मुझे अनु, द्रुह्य और पुरु के भविष्य की
11चिन्ता है। सप्तसिंधु के सिंहासन पर तो आर्या देवयानी के पुत्र
11ही बैठेंगे...परिषद् और महाराज करेंगे इसका विरोध ?

शेमित्रा—यह महत्वाकांक्षा मेरे मन में न कभी थी न है।
(भावना में डूब कर)—धूल में पड़े हुए पुष्प को उन्होंने ने कंठहार
11नाया ! मुझे क्या अधिकार है कि मैं उन की सम्राज्ञी के पुत्रों का
11प्रधिकार छीनूँ ? (आँखें नीची करके)—जो कुछ ले चुकी हूँ वही क्या
11कम है।

रोचना—असुर सम्राट् के दौहित्र क्या आर्यावर्त में वणिकों की ग्वाँस् शालाएँ परिष्कृत करेंगे ? (कंठ भर आता है ।)

शेमित्रा (म्लान स्वर से)—वरुण ! महान् असुर, तेरी इच्छा का रहस्य कौन समझ सकता है !

[शेमित्रा की धात्री इडविडा का प्रवेश—वह प्रौढ़ा आसुरी है ।]

इडविडा—तुष्ट्ररथ कह रहा है मध्याह्न से पहले ही प्रस्थान ठीक रहेगा । इधर ये दारिकाएँ न जाने क्या कर रही हैं !

शेमित्रा (थके हुए स्वर में)—धात्री मातेर्स यह मैं पेतर्स के लिये सन्देश अङ्कित कर रही हूँ ।

रोचना (आश्चर्य से मृत्तिकालेख पढ़ कर)—ओह जेमित्रा तुम पुत्रों को असुर राज के पास भेज रही हो, इतनी देर से मैं... !

शेमित्रा—बहिन ! बुरा न मानना, महाराज की आज्ञा न थी किसी को बताने की ।

रोचना—क्या तुम ने कहा था पुत्रों को असुर सम्राट् के पास भेजने को ?

शेमित्रा—पुत्रों के भविष्य की चिन्ता पिता न करेगा तो कौन करेगा ?

रोचना—आर्य सम्राट् के ऊपर अब मुझे इतना क्रोध नहीं है ।

इडविडा—धुएँ को कहाँ तक बाहर निकलने से रोका जा सकता है ? ये बच्चे अब बड़े हुए । किसी दिन भार्गवी की दृष्टि इन पर पड़ गई तो अनर्थ हो जायगा । इसके अतिरिक्त कहीं भार्गव ऋषि की कूटनीति से असुरों के सिंहासन पर कोई भृगु बैठ गया तो असुरों का शताब्दियों का परिश्रम व्यर्थ हो जायगा । इसीलिये महाराज ययाति पुत्रों को असुर जनपद भेज रहे हैं ।

रोचना—आर्य सम्राट् को संभवतः इस बात का भी भय है कि सप्तसिन्धु और गान्धार के आर्य, असुरों और आर्यों के सम्बन्ध को उचित न मानेंगे । आर्यों को अपने वर्ण का बड़ा अभिमान है ।

इडविडा (स्नेह से शेमित्रा को देख कर)—असुर क्या काले कुरूप हैं ! सप्तसिन्धु के किसी भी ब्राह्म-क्षत्र गोत्र में मेरी शेमित्रा का सा रूप-रंग कोई खोज तो दे—यह सुनहरे केश, ये सागर की गहराई और नीलिमा से रंगी हुई आँखें...बस एक ही सुन्दरी है जिससे मेरी शेमित्रा की तुलना हो सकती है, वह है आकाश पथ पर नित्य अपना अश्वरथ दौड़ाने वाली देवी ओसेस् (ऊषा) !

रोचना—आर्यसुन्दरियों में सौंदर्य है, पर अंगों के कटाव में एक ऐसी तीक्ष्णता है जो देखने वाले की आँखों में चुभ जाती है । आसुरियों के अंगों में है एक कोमल मोहकता, लावण्य का कुछ विचित्र आकर्षण !

[उद्यानपाल परिश्रवा का प्रवेश]

उद्यानपाल—असुर-देवी ! रथ आ गया है । महाराज की आज्ञा मध्याह्न से पहले प्रस्थान हो जाय ।

शेमित्रा—आर्य ! मैं महाराज की ही प्रतीक्षा कर रही हूँ । उनकी आज्ञा है—पुत्रों का प्रस्थान मङ्गल में ही करूँगा ।

उद्यानपाल—तो मैं महारथी तुष्टरथ से कहता हूँ कुछ देर और प्रतीक्षा करें ।

[जाता है ।]

इडविडा—तो मैं पुत्रों को लाती हूँ ।

[पीपल के पेड़ के नीचे वरुण की एक मूर्ति है । मूर्ति के चारों हाथों में, कालदंड पाश, कुठार और कमण्डलु है । पास ही एक छोटी-सी वेदी है, जिसके पास अग्निहोत्र की सामग्री है । शेमित्रा सिन्दूर, लालफूल और गन्ध मूर्ति के पास रखती है । रोचना उसकी सहायता करती है ।]

रोचना—तू वरुण की पूजा करेगी या अग्निहोत्र ?

शेमित्रा (सोच कर)—पुत्र तो पिता की परम्परा ही मानते हैं, पर मैं पुत्रों से दोनों ही कार्य कराऊँगी । हमारे महाराज तो वरुण में बड़ी श्रद्धा रखते हैं । वह तो उनका मन्दिर भी बनाना

चाहते हैं। वैसा ही जैसा अपने असुर जनपद में है; पर वे डरते हैं, कहीं देव और महर्षि यह न समझ बैठें कि महाराज ययाति सप्तसिन्धु में असुरों की सभ्यता फैलाना चाहते हैं।

रोचना—वह तो होना ही है एक दिन...पानी की बाढ़ को किसी ने रोक पाया है ?

[नेपथ्य में सम्मिलित ध्वनियों और यज्ञधूम की सुगन्धि का अचानक आक्रमण—

“ॐ अग्निमीले पुरोहितम्
यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्
होतारं रत्नधातम् ।”]

शेमित्रा—यज्ञशाला में अग्निहोत्र हो रहा है। वहाँ से सीधे...

[व्यग्र और चिन्तित इडविडा का तेजी से प्रवेश ।]

इडविडा—अनर्थ हो गया ! तीनों कुमार न जाने कहाँ चले गये—खेलते-खेलते। दासी घूर्णिका कह रही है उसने अग्नि के समान तेजस्वी तीन कुमारों को यज्ञशाला में घुसते देखा है।

शेमित्रा (माथे पर हाथ रख कर)—यह भी आज ही होना था ! वहाँ सोमावती के पौरमुख्य ऋषि गण और आर्य महाजन बैठे होंगे। आर्या देवयानी भी वहीं होंगी। पूछताछ होगी किसके पुत्र हैं। वरुण ! हे महान् असुर ! मुझसे अवश्य तुम्हारी पूजा में कोई त्रुटि हुई है। (कंठ भर आता है ।)

[उद्यानपाल का प्रवेश ।]

उद्यानपाल—देवि ! सम्राट् प्रमोद-उपवन में प्रवेश कर रहे हैं।

रोचना—अकेले हैं ?

उद्यानपाल—नहीं ! सम्राज्ञी साथ हैं और देवी शेमित्रा के तीनों कुमार ।

इडविडा—क्या होने जा रहा है ! इतना उद्योग व्यर्थ ही गया। रोचना, तुम शेमित्रा को लेकर जाओ। मैं लतागुल्म की ओट में होकर देखती हूँ—पवन किस ओर बह रहा है।

[निराशा की मूर्ति शेमित्रा रोचना के कन्धे का सहारा लेकर लड़खड़ाती हुई जाती है। इडविडा वरुण की मूर्ति के पीछे लता-कुंज में छिप जाती है; महाराज ययाति और सम्राज्ञी देवयानी का प्रवेश—देवयानी तेजस्वी भृगुवंश की कन्या है। गौर-वर्ण आर्य सौन्दर्य की प्रतिमा। उसके मुख पर वर्ण का अभिमान, ब्राह्मणत्व का तेज और गति में सम्राज्ञी पद का गौरव है। इस समय उसके नेत्रों में शंका की छाया और अधरों की फड़कन में व्यंग्य मिश्रित रोष की थिरकन है। ययाति की युवावस्था का मध्यकाल है। सुगठित भव्य शरीर। मुख पर विलासिता और शौर्य की छाप और नेत्रों में एक विशेष प्रकार की अस्थिरता। पीछे शेमित्रा के तीनों पुत्र अनु, द्रुह्यु और पुरु उछलते कूदते चले आ रहे हैं। बच्चों की आयु क्रमशः सात, पाँच और तीन वर्ष है। वे पुष्ट, चपल, गौरवर्ण और पिङ्गल केशी हैं।]

देवयानी—हाँ पुत्रक ! तुमने बताया नहीं तुम्हारी माता का क्या नाम है ?

अनु—हमारी मेतर्स का ?

देवयानी (फुसला कर)—हाँ हाँ मेतर्स का।

पुरु (नाचते हुए)—मेतर्स का नाम अम्बा है।

[देवयानी और सम्राट् हँस पड़ते हैं।]

द्रुह्यु—हमें वाण चलाना भी आता है।

देवयानी (दुलार के स्वर में)—सच ! किस ने सिखाया ?

द्रुह्यु (ययाति की गोद में दौड़ कर)—इन्होंने ! ये यहाँ नित्य आते हैं। इन्होंने हमें मिट्टी के शेर और मोर भी दिये हैं।

देवयानी (व्यंग्य से मुस्करा कर)—क्यों महाराज ? अकारण यह अनुग्रह की वर्षा !

ययाति—बालकों के सरल निश्छल प्रेम में एक सहज ही आकर्षण होता है, देवि !

देवयानी (तीक्ष्ण दृष्टि से देख कर)—महाराज, कितना साम्य है आपकी और इन बालकों की आकृति में !

ययाति—प्रकृति का खेल है यह भी देवि ! पुत्रो तुम लोग जाओ, खेलो ।

देवयानी (तीव्र स्वर से)—नही आर्यपुत्र ! अभी नहीं । मेरे मन में भारी सन्देह उठ खड़ा हुआ है । मेरे अन्तःपुर के उपवन में ये बालक पल रहे थे और मुझे पता भी नहीं । यह आकृति-साम्य !

ययाति—आकृतियों में साम्य और वैषम्य तो मिलते ही रहते हैं । कहाँ तक रोक सकोगी ।

देवयानी (ध्यान न दे कर)—पुत्रो, तुम कहते थे तुम्हारी अम्बा यहीं रहती है । बुला सकोगे ?

अनु—हाँ सम्राज्ञी !

[तीनों बालक दौड़ कर उपवन स्थित कुटीर में घुस जाते हैं ।]

देवयानी—बालक शेमित्रा के कुटीर में क्यों घुसे ? इस में भी कोई रहस्य अवश्य है ।

ययाति—शङ्काएँ कभी-कभी भय के रूप में सामने आती हैं देवि ! (हास्य)

देवयानी—तो आर्यपुत्र ! आप निश्चित रूप से कह सकते हैं... (वृक्ष के नीचे पड़ी मिट्टी की ईंटों को उठाकर, जिन्हें शेमित्रा शीघ्रता में छोड़ गई थी)...आश्चर्य है, यह ईंटें जिन पर असुर जन शब्द अङ्कित करते हैं, यहाँ क्यों ? देखती हूँ..... !

[पढ़ कर उसके मुख का भाव बदल जाता है । मुख आरक्त हो उठता है और नथुने फड़कने लगते हैं ।]

देवयानी (बाँतों से अधर दबा कर)—जिस बात की आशङ्का थी, यह रहस्य वही है । महाराज आप जानते हैं, मैं असुर लिपि पढ़ सकती हूँ ।

ययाति (निष्प्रभ होकर)—स्वाभाविक है देवि ! इतने दिन असुर जनपद में रहीं हो।

देवयानी—आर्यपुत्र ! विवाह से पूर्व मेरे पिता ने आप से कोई वचन लिया था, याद है ?

ययाति—ब्राह्मणों को दिया हुआ वचन भूलने की वस्तु नहीं है, देवि !

देवयानी (गहरी साँस लेकर)—इतना बड़ा छल मेरी आँखों के सामने होता रहा और मैं समझ न सकी। स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?

ययाति (भयभीत स्वर में)—स्पष्ट ही कह दूँ देवि ! एक दिन तो कहना ही था। ये तुम्हारे ही पुत्र हैं, यदु और तुर्वसु के भाई।

देवयानी (क्रोध विह्वल स्वर में)—आसुरी ने यहाँ भी मुझ से छल किया। दो नावों पर पैर रखने का क्या परिणाम होता है महाराज ?

ययाति (फीकी हँसी हँस कर)—जल की अतल धारा में सदा के लिये विश्राम, देवि !

देवयानी—भृग्वंशियों की महिमा शायद आप भूल गये हैं। परमदेव विष्णु भी हमारे आदिपुरुष का चरणचिह्न अपने वक्ष पर धारण करते हैं। राजा दंड का राज्य भार्गव ऋषि के शाप से अरण्य बन कर चीत्कार कर रहा है।

ययाति—जानता हूँ, भगवान भार्गव के सामने मैंने महान अपराध किया है।

देवयानी—उन्होंने असुर राजकन्या के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखने की आज्ञा दी थी। अग्नि की साक्षी में जिस धर्मपत्नी को आपने स्वीकार किया उसे धोखा देकर अन्य स्त्री से सम्बन्ध जोड़ना एक ऐसा भयंकर अपराध है, जिसे मेरे पूज्य तात कभी क्षमा न करेंगे।

ययाति—क्षमा करना भी न चाहिये देवि ! उनके दिये हुए दंड को स्वीकार करने के लिये सदा प्रस्तुत हूँ। परन्तु मैंने क्षत्रिय हृदय पाया था।

देवयानी—तो ?

ययाति—कोमल कली सी वह असुर बालिका अभी किशोरी भी न हो पाई थी कि तुम उसे जन्मदासी बना कर स्वजनों की गोद से उठा लाई। किस अपराध पर ? बचपन की एक भूल—भृगुवंशियों की मर्यादा के विरुद्ध कुछ शब्द—और उसका निर्दोष यौवन तिलतिल कर तुम्हारी प्रतिहिंसा की अग्नि में जलने लगा !

देवयानी—अब तक मैं भ्रम में थी कि मैं स्वाधीनपतिका हूँ, सम्राट् ययाति के मनोराज्य की एक मात्र स्वामिनी।

ययाति—करुणा और अनुराग में कुछ अन्तर होता है देवि !

देवयानी—अगर मैं जान पाती कि भीतर ही भीतर महाराज किसी अन्य नारी के अनुराग रज्जु में बँध रहे हैं तो आत्म सम्मान खोकर एक भी क्षण यहाँ न रहती।

ययाति—देवि मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? क्षत्रिय किसी नारी की प्रणय याचना अस्वीकार नहीं करते।

देवयानी—तो शोमित्रा ने स्वयं प्रणय निवेदन किया था ! लज्जा और आत्म सम्मान तो इन आसुरियों को छू तक नहीं गये।

ययाति—अगर आर्याओं में लज्जा और आत्म सम्मान है तो असुर कन्याओं में भी शील और सङ्कोच है। सदाचार किसी वर्ण विशेष की सम्पत्ति नहीं है।

देवयानी—आप स्वयं कह रहे थे.....

ययाति—नारी हो कर इतना भी न समझ सकीं, बार-बार रोकने पर भी आँखों में उमड़ता हुआ जल, जल तरंगों में पद्म पत्र से काँपते हुए अधर, लम्बी साँसें जो भीतर ही भीतर घुमड़ती हुई

भाप की तरह सारे शरीर को कंपा देती हैं, यह सब मिलकर निष्फल यौवन के मूक आर्तनाद की एक ऐसी कथा कह जाते हैं, जिसे.....

देवयानी (विद्रूप से)—जिसे केवल पुरुष का हृदय ही समझ सकता है। ठीक है न महाराज !

ययाति—तो मैं आशा करूँ, सप्तसिन्धु की महिमामयी सम्राज्ञी ने इन तीन बालकों को स्वीकार कर लिया है !

देवयानी—शब्दों की छलना में इतना न भूलिये महाराज ! यह प्रश्न यहीं समाप्त नहीं होता । प्रश्न है धर्म व्यवस्था का, प्रश्न है सोम वंश के युवराज पद का, प्रश्न है आर्यों और असुरों के आत्माभिमान का । सम्राटों का एक अनिश्चित पग सहस्र सहस्र प्रजा के जीवन मरण का प्रश्न बन जाता है ।

ययाति—मान लेता हूँ, मैंने इस असहाय युवती से प्रणय किया । भूल या अपराध कुछ भी कह सकते हो । क्योंकि तुमसे छिपा कर हुआ, किन्तु इसमें सहस्र सहस्र प्रजाओं के जीवन मरण का प्रश्न कैसा ?

देवयानी—महाराज इतने अबोध न बनिये । क्या आपके आर्य महाजन इस कृत्य को निन्दा न करेगे ? अभी तक आर्यों के किसी राजन्य का संबंध किसी असुर कन्या से नहीं हुआ ।

ययाति—क्या इन्द्र की पत्नी पौलोमी शची असुर कन्या न थी ?

देवयानी—वे देव है । आर्यावर्त की सीमा के अन्दर कभी ऐसा नहीं हुआ ।

ययाति—जो कुछ नहीं हुआ, क्या वह कभी न होना चाहिये ! क्या जो कुछ पुरातन है वही सत्य है ? नई प्रथाएँ, नई धारणाएँ क्या सदा मनुष्य के हितों का नाश ही करती हैं ?

देवयानी—हित-अहित का विचार कर के तो आपने आसुरी से प्रेम नहीं किया । सुन्दरी शेमित्रा के स्थान पर यदि कोई काली कुरूप निषाद कन्या होती तो ?

ययाति—सौन्दर्य तो तुम्हारा भी कम नहीं है, भार्गवी ! सच मानो शेमित्रा के प्रति मेरे हृदय में करुणा ही थी ।

देवयानी—करुणा का दान करते करते हृदय का दान कर बैठे—वही हृदय जो कभी मेरी सम्पत्ति था ! किन्तु करुणा की बेल में भी कड़ुए फल लगते हैं। सप्तसिन्धु और कम्बोज के आर्य महाजन और ऋषि इस सम्बन्ध को कभी स्वीकार न करेंगे; आपका सम्राट् पद पौरायत्त है। देवों के प्रमुख शत्रु की कन्या उन की महारानी कहलायेगी, इस से पहले ही आप को अपने पूर्व पुरुषों का सिंहासन छोड़ना पड़ेगा।

ययाति—सम्राट् भी मनुष्य है। उस के भी हृदय हो सकता है।

देवयानी (तिरस्कार से)—एक या अनेक ?

ययाति—भार्गवी शान्त हो कर तो सोचो—किस प्रकार पुरु से यदु श्रेष्ठ है !

देवयानी—इसलिये कि यदु की जननी ऋषियों में श्रेष्ठ भार्गव की पुत्री है और पुरु की माता अनार्य वृषपर्वा की; इसलिये कि यदु की माता ने अग्नि और ऋषियों की साक्षी में पति को वरण किया था और पुरु की माता ने समाज और देवताओं की आँखों में धूल फेंक कर...

ययाति—रुको नहीं, आवेगों का निकल जाना ही ठीक है। और कुछ कहना शेष है ?

देवयानी—हाँ, है। अनुराग हो या वासना। यह कोई ऐसा सरल खेल नहीं, जिसे दो व्यक्ति मनचाहे रूप में खेल लें। सात पीढ़ियों और सात गोत्रों को इस का परिणाम भोगना पड़ता है। सप्तसिन्धु के ऋषि आप को और आप के पुत्रों को आर्यत्व से पतित कर देंगे, वह दिन देखने के पहले ही मैं अपने पुत्रों को ले कर इस पाप-पुरी से चली जाऊँगी।

ययाति—क्या कोई अन्य मार्ग नहीं है ?

देवयानी—मैं आप के मन की बात जानती हूँ। आप चाहते हैं कि मैं अपने पितृदेव से व्यवस्था दिला दूँ कि आप ने जो कुछ किया है उचित है। और तब सप्तसिन्धु के सिंहासन पर शोमित्रा

के पुत्रों का अभिषेक हो। (क्रोध से काँप कर) इस हलाहल को पीने के लिये मैं एक क्षण भी न रुकूंगी परन्तु जाने से पहले उस नारी से...जो मेरे सुख के संसार में चिनगारी बन कर आई है!

[तेजी से जाती है।]

ययाति (चिन्तित मुद्रा में)—मोक्ष था अनु, द्रुह्य और पुरु को आज ही भेज दूँगा परन्तु यह विस्फोट भी होना ही था। ज्वालामुखी के मुख पर पर्यंक बिछा कर कौन शान्ति से सो सकता है। नर नारी के सहज आकर्षण की इस ग्रन्थि में उलझना जितना सरल है, उतना ही कठिन है इसरो मुक्त होना।

[पसीने से भीगी हुई और लड़खड़ाती हुई शेमित्रा का दूसरी दिशा से प्रवेश।]

शेमित्रा (पास आ कर काँपते हुए अधरों से)—आर्य देव प्रणाम करती हूँ। आर्या देवयानी रुष्ट और उत्तेजित हो कर अभी अभी यहाँ से गई है? क्या...

ययाति (शान्त स्वर में)—देधि रत्नस्य खुल चुका है। अब हनारी और तुम्हारी मर्यादा इसी में है कि आर्या देवयानी के रोष को शान्तिपूर्वक सहन करें।

शेमित्रा (ययाति के चरणों के निकट बैठ कर)—संकट की इस भयानक घड़ी में आप मेरे साथ हैं न?

ययाति (निर्विकार भाव से)—उसी सीमा तक जिस सीमा तक एक विवाहित पुरुष जा सकता है।

शेमित्रा (शून्य दृष्टि से उस की ओर एक क्षण देख कर)—तो यह आप का उत्तर है। रोचना ठीक ही कहती थी—जल में प्रति क्षण बनती बिगड़ती तरंगों की अमरता का विश्वास सत्य हो सकता है पर विवाहित पुरुष के वचनों का विश्वास नहीं....(सिसकियों में डूब कर) आपको भी कुछ क्यों कहूँ, दोष तो मेरा ही था। (रोती है।)

[देवयानी का पुनः प्रवेश—रोचना, इडबिडा, अनु, द्रुह्य आदि भी पीछे-पीछे आते हैं।]

देवयानी (व्यंग्य से)—उपवन का कोना कोना खोज डाला और यहाँ पर अभिनय हो रहा है ! हाँ जाने से पहले यह अवश्य पूछूंगी कि किस अधिकार से तुम ने यह चोरी की—मेरे पति के अनुराग की—मेरे सुख सौभाग्य की ?

शेमित्रा (स्तम्भित रह कर)—चोरी...मैं ने !

देवयानी (कटु स्वर में)—सीधी भाषा में चोरी को चोरी ही कहा जाता है चाहे कवियों की आलङ्कारिक भाषा में उसे कुछ भी कह लो । सरलता के आवरण में पाप छिपाये नहीं छिपता शेमित्रा !

शेमित्रा (सिर ऊँचा कर)—राहु की तरह क्रूर दुर्देव ने वचन में ही मेरे सुख के चन्द्रमा को ग्रस लिया । विवशता, दीनता और पराधीनता से बढ़ कर भी कोई पाप होता होगा । आर्या देवयानी मुझे दंड दो । आर्यपुत्र के प्रणय में मैं तुम्हारी साझी बनी । यह भी न सोच सकी कि वे पराया धन हैं ।

देवयानी—मानती हो तुम ने कुछ अपराध किया है । सह सकोगी इस का दंड ?

शेमित्रा—पुलकित होकर सहूँगी । उसी प्रकार जिस प्रकार कभी आर्यपुत्र के...(चुप हो जाती है ।)

देवयानी—स्वप्नों के आकाश में मत उड़ो । अभी यथार्थ का कठोर धरातल देखना शेष है, आसुरी ।

शेमित्रा—कहो तो अपना वक्ष विदीर्ण कर उस रक्त से तुम्हारे चरण धो दूँ । तब तो विश्वास होगा ।

देवयानी—सुनो ! तुम्हारा अपराध ऐसा गुरु है, ऐसा अकल्पनीय है कि दंड उस से भी गुरुतर होना चाहिये । तुम्हें आर्यपुत्र का साथ छोड़ कर जाना होगा । जा सकोगी ?

शेमित्रा (काँप कर)—असुर जनपद !

देवयानी—नहीं जहाँ मैं कहूँ । तुम्हारे पुत्रों की भी वही व्यवस्था होगी जो मैं चाहूँगी । उसमें कोई विरोध न सुनूगी ।

रोचना—भार्गवी तुम नारी हो या नागिन ! क्रूरता की ऐसी विषैली फुफकार न छोड़ो । अरण्य के हिंसक पशु भी रो उठेंगे ।

शेमित्रा—कटुता न बढ़ाओ रोचना ! यह क्रूरता नहीं है । यह तो मेरे अपराधों का सीधा-सा दंड है, जिसे एक ग्रामीणा भी समझ सकती है । जिस के अधिकारों पर आक्रमण होता है उस की अन्तर्व्यथा को कोई दूसरा नहीं समझ सकता । अगर मैं आर्यदेव की परिणीता होती—और मेरे पति के हृदय को कोई दूसरी स्त्री छीन लती तो मुझे भी कुछ ऐसी ही मर्मवेदना होती । पति के अनुराग से बढ़ कर पत्नी की कोई और सम्पत्ति होती होगी...?

देवयानी—कलुषित मन में भी एक अन्तरात्मा छिपी होती है—पाप के पथ पर दौड़ते हुए पापी यदि उस की पुकार सुन ले तो पाप हो ही क्यों ?—तुम ने मेरे सुख के संसार में आग लगाई है । मेरे पति के सम्मान और चरित्र को लांछित किया है । तुम्हें प्रायश्चित्त की अग्नि में जलना होगा ।

शेमित्रा—और मेरे पुत्र ?

देवयानी—उन की चिन्ता में कलूँगी । वे मेरे पास रहेंगे; तुम सोमावती छोड़ कर आज ही चली जाओ । सप्तसिन्धु के पूर्व में यमुना के तट पर हमारा सेनापति इन्द्रभद्र नवीन जनपद बसा रहा है । वह तुम्हें शरण देगा । इस जीवन में अब कभी आर्यपुत्र के दर्शन करने की चेष्टा न करना ।

रोचना—प्रतिशोध की भी पराकाष्ठा होती है, भार्गवी ! वरुण—महान असुर, कहाँ है तुम्हारा कालदण्ड ! भृगुओं के अभिमान पर क्यों नहीं गिर पड़ता..... ! (क्षुब्ध हो कर प्रस्थान ।)

शेमित्रा (कातर स्वर में)—आर्य देव ! मेरे जीवन-सर्वस्व, आप भी कुछ कहिये ?

ययाति (धीमे स्वर में)—तुम देख ही रही हो देवि, मेरी विवशता की यह विभीषिका ! प्रजाबल, देव शक्ति और मेरा क्षत्रियत्व सभी ब्राह्मणों के अनुशासन में है । सम्राट् है केवल दस्युओं

से प्रजा की रक्षा करने के लिये, नियुक्त किया हुआ उन का एक दास । मेरी और महाराज वृषपर्वा की स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं है । मुझे भी ऋषिवर उशनस् का उतना ही भय है । (दुखित स्वर में) अच्छा होता यदि ब्राह्मणों की शक्ति में जकड़े हुए मुझ जैसे आर्यपुरुष से प्रेम न करके किसी स्वतंत्र अनार्य व्यक्ति से...

शेमित्रा (उत्तेजित स्वर में)—बस महाराज आगे न सुन सकूंगी ।

ययाति—देवि ! तुमने एक कायर से प्रेम किया है । इसके दण्ड से तुम्हारी रक्षा नहीं ।

शेमित्रा—जानती हूँ आर्य देव ! परिणीता पत्नी और अपरिणीता प्रेमिका की मर्यादाएँ एक सी नहीं हैं । पत्नी, जीवन और मरण में साथ रहने का आग्रह कर सकती है; किन्तु अपरिणीता यदि अपने स्नेह पात्र के सुख और सम्मान को लांछित होते हुए देख कर एक क्षण भी साथ रहने का आग्रह करे तो उस का प्रेम—प्रेम नहीं, अभिशाप है और वह प्रेमिका नहीं—विनाश की प्रतिमा है ।... कच्चे धागों का बंधन जान कर भी मैंने आपसे प्रेम किया था । इस लोक के परे भी एक दूसरा लोक सुना है, वहाँ व्यवस्था और धर्म के यह बंधन न होंगे । अब मेरा आप से वही मिलन होगा । वरुण की यही इच्छा मालूम होती है ।

[प्रस्थान]

ययाति—यह अटूट अनुराग ... यह पर्वत जैसी अचल एक-निष्ठा । इसे देख कर कौन कह सकेगा कि प्रेम केवल अग्नि की साक्षी और विवाह के मन्त्रों में ही उत्पन्न होता है । कीचड़ में भी कमल खिलता है । यह भी वही है । (देवयानी की आँखों में आँखें डाल कर) हाँ देवयानी ! शेमित्रा जा रही है । तुम को प्रसन्न होना चाहिये ।

देवयानी—उपहास न करिये आर्यपुत्र ! यह दो नारियों के जीवन-मरण का प्रश्न है ।

[नेपथ्य में भयंकर कोलाहल—शस्त्रों की खनखनाहट, 'असुरेन्द्र की विजय हो,' 'असुर-महान की जय हो,' 'आर्यों का नाश हो,' आदि की सम्मिलित ध्वनियाँ—तुमुल कोलाहल, शंख-तूर्य-भेरी आदि की ध्वनियाँ.....]

नगरपाल मकरकेतु का उद्यानपाल के साथ प्रवेश ।]

मकरकेतु (उद्विग्न स्वर में)—सम्राट की जय हो ! अकल्पित घटना हो रही है देव ! असुरों की विजयवाहिनी ने सारा नगर घेर लिया है । सिंहद्वार तोड़ कर पीली दाढ़ी और ताँबे के से रंग वाले सहस्रों असुर-पिशाच नगर में घुस आये हैं, जैसे सहस्र-सहस्र मधुमक्षिकाओं के छत्तों को किसी ने छेड़ दिया हो ।

ययाति—तुम और तुम्हारे प्रहरी क्या सोम पान करके अचेत हैं ! नगरपालों से अधिक सतर्कता की आशा की जाती है ।

मकरकेतु—अपराध क्षमा हो देव ! असुरों से हम आर्यों का कोई वर न था । पशु के देवों से हमारी कोई मैत्री न थी । किसे ध्यान था कि देवों को परास्त करके असुरों की विशाल सेना पश्चिम की ओर न जा कर पूर्व में कम्बोज जनपद पर टूट पड़ेगी ।

उद्यानपाल—कल मैंने एक असुर महारथी को उपवन में देवी शेमित्रा की धात्री इडविडा से रहस्यपूर्ण वार्तालाप करते हुए देखा था ।

ययाति—मूर्ख हो !

नगरपाल—लज्जित हूँ । परन्तु सूचना देनी भी आवश्यक है । सोमावती की वीथियों में हाहाकार मच रहा है । बालकों की हत्या...आर्य तृणियों का अपहरण हो रहा है—ऐसे संकट काल में... !

ययाति (चिन्तित मुद्रा में)—इधर यह अप्रत्याशित अनर्थ होता दिखाई दे रहा है और हमारी सेनाएँ नये-नये जनपदों का विजय करने गई हुई हैं !

देवयानी—असुरों के पुरोहित तो स्वयं मेरे पिता भृगुश्रेष्ठ शुक्र हैं । असुरों से हमारा क्या वर ! [बिस्मय]

[रोचना और तुषरथ का प्रवेश ।]

रोचना (अट्टहास करते हुए)—हा ! हा ! असुरों से मानवों का क्या वैर ? समुद्र-मेखला पृथ्वी के एकछत्र स्वामी, महाप्रतापी असुर सम्राट् की एकमात्र पुत्री यहाँ सोमवंशियों के अन्तःपुर में आर्या देवयानी के चरण धोये, उसे जनपद से निर्वासित किया जाय, असुर सम्राट् के दौहित्रों को आर्य वणिकों की हाटों में बेचा जाय और उस पर यह प्रश्न कि असुरों से हमारा क्या वैर ? दस सहस्र आर्य-युवतियाँ जब असुरों के जनपद में गायों के मोल बिकेंगी तब असुरों की एक कुल-कन्या के अपमान का प्रतिकार होगा । जाकर शेमित्रा को यह शुभ समाचार सुना आऊँ । [प्रस्थान]

ययाति—कुछ सुन रही हो देवि !

देवयानी—सुन रही हूँ महाराज ! आज का दिन तो जैसे रहस्यों की एक शृंखला है ।

ययाति (गंभीर हो कर)—तुषरथ, यह क्या है ! तुम असुर सम्राट् के दौहित्रों को लेने आये थे ? हमारे विश्वास का प्रतिफल यही है ?

तुषरथ (भीम-स्वर में)—अविनय क्षमा हो, आर्य सम्राट् ! आपका और भार्गवी का विवाद मैं ने सुन लिया है । जम्बू द्वीप के एक छोर से ले कर दूसरे छोर तक जिस के राज्य की सीमाएँ हैं—ऐसे महाप्रतापी असुर राज वृषपर्वा की दुलारी पुत्री यदि आर्यों के अन्तःपुर में लांछित की जाय और फिर उसे जनपद से तिरस्कार पूर्वक निर्वासित किया जाय, उस के पुत्रों को दास कह कर बेचा जाय तो क्या असुर नवयुवकों का बाहुबल प्रतिशोध के लिये न तड़प उठेगा ?

देवयानी—असुरों के महापुरोहित मेरे पिता भगवान् उपनस् हैं, उन्होंने ने इस विग्रह की अनुमति कैसे दे दी ? आश्चर्य है !

तुषरथ—महापुरोहित थे; अब नहीं हैं । देवों के ऊपर विजय प्राप्त करने के पश्चात् असुरों को उन की आवश्यकता नहीं रही । असुर प्रजा शेमित्रा के अपमान से तिलमिला रही है । देवों और

असुरों के संघर्ष के कारण असुर गणपति किसी प्रकार सहन कर रहे थे। दो सहस्र सामन्तों ने यज्ञशाला और राजसभा घेर रखी है।

देवयानी—तो क्या मेरे पिता बन्दी हैं ?

तुष्यरथ—असुर इतने कृतघ्न नहीं हैं। वे शिविर में हैं और आपसे कुछ क्षणों के लिये मिलना चाहते हैं।

ययाति—तुष्य, कुछ समय के लिये क्या वे यहाँ न आ सकेंगे—संभव है कि उन के आने पर कोई मार्ग निकल आये।

तुष्यरथ—भार्गव ऋषि को आप का संदेश पहुँचाये देना हूँ। असुर सामन्त-गण को भी रोकता हूँ, परन्तु ध्यान रहे कि असुरों की एक कन्या के अपमान का प्रतिकार शत-शत आर्य कन्याओं के अपहरण से ही होगा। [प्रस्थान]

ययाति—मनुष्य की मर्यादा इतनी ऊँची है देवयानी ! विशेष कर नारी की। तुम कह रही थी प्रणय के स्वच्छंद खेल का परिणाम सात पीढ़ियों को झेलना पड़ता है। एक नारी के अपमान की भी इतनी गंभीर प्रतिक्रिया हो सकती है—शेमित्रा को जन्म-दासी बनाते समय इस की तुमने कल्पना भी न की होगी।

देवयानी—मुझे पता न था कि आर्यावर्त के कमल कानन में यह असुर-कन्या तुष्यार-वर्षा की तरह चरण रखेगी।

[महर्षि शुक्र का तुष्यरथ के साथ प्रवेश—मस्तक पर श्वेत केश और भव्य श्वेत दाढ़ी वृद्धावस्था के अन्तिम चरण की सूचना दे रही है। अन्तर्भेदिनी तीक्ष्ण दृष्टि। मुख पर तप और नियमानुशासित जीवन की कठोर छाप। सब उठ कर प्रत्युत्थान देते हैं।]

शुक्र (आशीर्वाद दे कर)—भूल किस की थी ! शेमित्रा स्वतः आर्यकुल में नहीं आई। वस्त्रखंड में यज्ञ की अग्नि को बांध कर लाने का अविवेक किस ने किया था देवयानी ?

देवयानी (अमर्ष से)—तात ! मैं छली गई हूँ ! मेरा अपमान हुआ है। महाराज ययाति ने भृगुवंश की शपथ खा कर जो वचन दिया था उसे उन्होंने भंग किया। शेमित्रा पुत्रवती है

शुक्र—तेरी प्रतिहिंसा मर्यादा की सीमा के बाहर जा चुकी थी। देवों ने ज्योत्स्ना की उज्ज्वलता, सागर की नीलिमा और पुष्पों का पराग ले कर उस स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण किया होगा और तू उस अप्सरा को अपने साथ पतिकुल में ले आई। किसी का कहना न माना। वह भी उसे आजन्म दासी बना कर। नारी की जन्मजात वासनाओं पर प्रतिबन्ध लगा कर। यह न सोचा कि वर्षा के जल से उमड़ती हुई सरिता पर कब कौन प्रतिबन्ध लगा पाया है? हिमाद्रि के शिखर से गिरती हुई वेगवती महानदी को समुद्र की ओर दौड़ लगाने से कौन रोक पाया है? किस के अंकुश को मान कर महासागर की चंचल ऊर्मियाँ निशानाथ की मनुहार करना छोड़ देंगी। बोल देवयानी! चुप क्यों हो गई?

देवयानी (स्तब्ध हो कर)—तात, आप भी ऐसा कहते हैं! तो क्या शोमित्रा ने जो कुछ किया वह कोई अपराध नहीं! कोई पाप नहीं? एक नारी दूसरी नारी के अधिकारों का अपहरण करती रहे और वह कोई अपराध नहीं? मैं ने तो अब तक यही समझा था कि पति के प्रेम पर परिणीता पत्नी का ही एकाधिकार होता है।

शुक्र—अधिकार तो सभी के कुछ न कुछ होते हैं। अपराध भी सभी से कुछ न कुछ बन ही पड़ते हैं। स्वाधीनता क्या जीवमात्र का नैसर्गिक अधिकार नहीं है! शोमित्रा की स्वाधीनता पर इतना बड़ा अंकुश लगा कर क्या तूने उस से भी बड़ा अपराध नहीं किया?

देवयानी (परास्त मुद्रा में)—कह दीजिये वह कोई पाप नहीं था!

शुक्र—दूसरे की अणु जैसी भूलें गिनने में मनुष्य इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपनी पर्वत जैसी भूल दिखाई नहीं देती। विवाह के पूर्व वृहस्पति पुत्र कच के संबंध में तुझ से जो भूल हुई थी उसे क्या शोमित्रा नहीं जानती? यदि वह तेरे चरित्र पर मूढ़ी भर धूल ले कर उड़ाये तो तुझे कैसा लगेगा? परन्तु मैं जानता हूँ

वह शीलवती असुर कन्या कभी स्वप्न में भी उस बात को अपने अधरों पर नहीं लायेगी ।

देवयानी (काँप कर)—पितृदेव मैं लज्जित हूँ, आप का आदेश मुझे मान्य होगा ।

शुक्र—महान् संकट तेरे द्वार पर खड़ा है और तू पाप-पुण्य की विवेचना में लगी है । बीस हजार असुर योद्धाओं ने नगर में हाहाकार मचा रखा है । यज्ञशाला और राजसभा में दो सहस्र असुर गणपति खड़े हैं । तेरा एक शब्द उन्हें युद्ध के लिये विवश कर सकता है । समुद्र-मेखला पृथ्वी के स्वामी असुरेन्द्र वृषपर्वा की कन्या को अपमानित और निर्वासित कर के तू शान्ति की साँस न ले सकेगी... (कठोर स्वर में)...आर्यों और असुरों का यह विग्रह मैं बढ़ने न दूँगा—समझ ले ।

देवयानी (विनीत स्वर में)—तो क्या करने की आज्ञा देते हैं ?

शुक्र—पुरु और अनु को अपनी गोद में ले कर यज्ञशाला जाओ । असुरों और आर्यों की विराट सभा में जातवेदस् की शपथ खानी होगी और कहना होगा—शेमित्रा मेरी दासी नहीं । महाराज ययाति की द्वितीया पत्नी है, काम्बोज की महारानी, सोम वंश की शोभा और मर्यादा । (कुछ रुक कर) पुरु को आर्यावर्त का युवराज घोषित कर दे, नहीं तो आर्य कन्याएँ पशु और उरस् में पशुओं के मोल बिकेंगी ।

देवयानी—मेरे पुत्रों का क्या होगा ?

शुक्र—तेरे तुर्वसु को मैं असुर जनपद ले जाऊँगा, वह तुषा के उत्तर प्रान्त का स्वामी बनेगा । सप्तसिन्धु के सिंहासन पर असुर सम्राट् का दौहित्र और असुर-देश में भृगुओं का दौहित्र । तभी आर्यों और असुरों का विग्रह शान्त होगा ।

देवयानी—ऐसा ही करूँगी । पुरु को लेकर यज्ञशाला जाती हूँ । आता तुष्यरथ तुम मेरे साथ चलो ।

[दोनों का प्रस्थान]

ययाति (गंभीर स्वर में)—ऋषिवर आपने वह चर्चा क्यों छोड़ी। कच और देवयानी का संबंध देवयानी के विवाह के पूर्व की घटना है। मुझे ज्ञात है देवयानी ने कच से प्रेम किया था, परन्तु विवाह के उपरान्त उस ने मेरे अतिरिक्त स्वप्न में भी किसी अन्य पुरुष का चिन्तन नहीं किया। मुझे कष्ट हुआ है भगवन् ! देवयानी मेरी सम्मानिता पत्नी है।

शुक्र (अट्टहास करते हुए)—हा ! हा ! विष का उपचार विष से ही हो सकता है। वह मेरी पुत्री है। उस की प्रतिहिंसा की माप जितनी मुझे है उतनी तुम्हें नहीं हो सकती। मैं जानता हूँ वह और किसी उपाय से वश में नहीं आती।

ययाति (मुस्करा कर)—इसीलिये सब कुछ आप के समर्थ हाथों में सौंप कर मैं निश्चित था ! शेमित्रा को पत्नी रूप में स्वीकार करने के पहले आप की अनुमति प्राप्त की थी। तीनों पुत्रों के जन्म के समय भी आप का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था।

शुक्र—हूँ ! और इन स्त्रियों का वश चले तो राजनीति और धर्म-व्यवस्था, सन्धि और विग्रह की महत्वपूर्ण समस्याओं को अन्तःपुर के तुच्छ विवादों में उलझा दें।

ययाति—देवयानी शेमित्रा के प्रति अपने व्यक्तिगत वैर को आर्यों और असुरों के वर्णगत द्वेष का रूप दे रही थी।

शुक्र—मुझे भी इसी का भय था। मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ से विराट् को दूषित करता है। असुरों और आर्यों के इस महान जनपद को एक करने के प्रयत्न में मेरे मस्तक के केश श्वेत हो गये और इस लड़की का हठ मेरे पचास वर्ष के परिश्रम को निष्फल किये दे रहा था। असुर प्रजा अपनी राजकन्या के अपमान से क्षुब्ध थी। असुर सम्राट् उद्विग्न थे। आर्यों के प्रति उन की भावनाएँ कटु होती जा रही थीं—उधर आर्यों का यह वर्ण-द्वेष मिथ्या अहंकार की सृष्टि कर रहा था। इस विषमता के प्रतिकार, का एक ही उपाय था—आर्यों और असुरों का रक्त-संबंध।

ययाति—गुरुदेव इसीलिये तो हम आर्यों को अपने भार्गव पुरोहितों की प्रज्ञा और सुदृढ़ नीति पर गर्व है, जो बात इन अभिमानी आर्यों को कभी न सूझती...

शुक्र—सूझती कैसे राजन् ! इन के विचार में तो केवल ये ही सूर्य और चन्द्र की सन्तान है । विदेशी मात्र ही म्लेच्छ हैं ।

ययाति (प्रसन्न स्वर में)—शेमित्रा और देवयानी समझती होंगी कि यह सब घटनाएँ संयोग से हुई हैं । संयोग से ही आज तुष्यरथ आया ! संयोग से ही दासी घूर्णिका शिशुओं को यज्ञशाला में ले गई ! संयोग से ही असुर सैन्य ने नगर घेर लिये और आर्य सेनाओं ने विरोध नहीं किया ! संयोग से ही असुर गणपति अपनी कुल-कन्या के अपमान का प्रतिकार करने के लिये यज्ञशाला में खड़े हैं । उन बेचारियों को क्या पता कि इन घटनाओं के पीछे जम्बू द्वीप के कर्णधार महान् नीतिज्ञ भगवान् उशनस् की व्यवस्थित भृगुनीति कार्य कर रही है ।

शुक्र—अब जाओ, उस जन्मदुखिनी शेमित्रा को सान्त्वना दो । वह बेचारी तुम्हारी कायरता को अपने कर्मों का दोष समझ कर आँसू बहा रही होगी ।

ययाति—परन्तु ब्रह्मन्, धर्म व्यवस्था ?

शुक्र—हा ! हा ! धर्म व्यवस्था मैं दूँगा ।... (आत्म विश्वास और पौरुष के स्वर में) देखूँगा आर्यावर्त का कौन-सा ऋषि मेरे विरोध में खड़ा होता है । धर्म व्यवस्था सामर्थ्यवान् पुरुष देते हैं राजन् ! इस कार्य के लिये स्वर्गलोक से देवता उतर कर नहीं आते ।

ययाति—अनुगृहीत हुआ हूँ ऋषिवर ! (चरण छूता है)

शुक्र—देख रहा हूँ, इस तप विदग्ध अन्तर्दृष्टि से—महान् शक्तिशाली और तेजोदीप्त वंशों के आदि पुरुष बनोगे । रत्नप्रसू

यह असुर कन्या । इस का आर्य कुल में आना व्यर्थ न जायगा । असुरों और आर्यों के इस महामिलन में एक प्रखर प्रकाश, एक चमत्कार प्रकट होगा...!

ययाति—मेरे नेत्रों ने भी आज कुछ ऐसा ही प्रकाश देखा है ऋषिवर ! नारीत्व के यह दो रूप कितने भिन्न, त्रिकोण की दो रेखाओं की तरह...।

शुक्र—त्रिकोण की रेखाएँ जो दो विपरीत दिशाओं में जाती हैं। फिर भी वह रेखाएँ एक बिन्दु पर अवश्य मिलती हैं। राजन् वह बिन्दु है...

ययाति (परितोष की मुद्रा में)—देवयानी और शेमित्रा ही कह सकेंगी कि वह बिन्दु क्या है !

[यवनिका पतन ।]

द्रौपदी

द्रौपदी के बारे में.....

इस संकलन की तीसरी नाटिका द्रौपदी के विषय में भी कुछ कहना है। माता की आज्ञा से पांडवों ने अर्जुन द्वारा स्वयंवर में विजित पांचाली से विवाह किया—यह बात मेरी समझ में नहीं आती। यदि धर्मराज युधिष्ठिर न चाहते तो माता कदाचित् ऐसी आज्ञा न देती। संभव है कि पांचाली के सौन्दर्य की अग्नि में सुन्द-उपसुन्द की भाँति जल कर नष्ट होने से माता ने अपने पुत्रों की रक्षा करने के लिए ऐसी आज्ञा दी हो। परन्तु इसे द्रौपदी अस्वीकार कर सकती थी। द्रौपदी अत्यन्त तेजस्विनी महत्वाकांक्षिणी थी। संभव है उसने धर्मराज युधिष्ठिर की पत्नी बनने में अपना गौरव समझा हो और कुरु वंश की साम्राज्ञी होने की संभावना ने उसे आकर्षित किया हो। अर्जुन के प्रति द्रौपदी का विशेष प्रेम और ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर की अनुराग जन्य ईर्ष्या का भी संकेत महाभारत में मिलता है। महाभारत के अंत में जब हिमालय की ओर जाते समय द्रौपदी की मृत्यु होती है तब युधिष्ठिर कहते हैं कि इसकी मृत्यु इसलिए सबके पहले हुई है, क्योंकि यह अर्जुन से सर्वाधिक प्रेम करती थी। और भी घटनाओं का उल्लेख मिलता है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अर्जुन और युधिष्ठिर का आन्तरिक सम्बन्ध मालिन्यरहित नहीं था। एक बार युधिष्ठिर और द्रौपदी के कक्ष में प्रवेश करने के कारण अर्जुन को

बारह वर्षों का बनवास भोगना पड़ा। कारण कहा जाता है कि भाइयों में ऐसी शर्त हो गई थी। ऐसी कठोर शर्त क्यों रखी गई? इसका कारण यही हो सकता है कि भाइयों में द्रौपदी को लेकर घोर विग्रह की सम्भावना उत्पन्न हुई होगी और वह भी विशेष रूप से अर्जुन और युधिष्ठिर के मध्य में। द्रौपदी को जूए के दाँव पर लगाना युधिष्ठिर के लिए ही संभव था, अर्जुन से ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। द्रौपदी में मुझे मिश्र की रानी “क्लियोपैट्रा” के चरित्र से कुछ साम्य दिखाई देता है। महाभारत के युद्ध में भी एक बार अर्जुन और युधिष्ठिर के बीच में इतना भयंकर विस्फोट हुआ था कि अर्जुन ने युधिष्ठिर का वध करने के लिए तलवार खींच ली थी और कृष्ण के बहुत प्रयत्न करने पर ही अर्जुन शान्त हुए थे।

मैं यह समझती हूँ कि आलोचकगण महाभारत की घटनाओं का उक्त अर्थ लगाने के कारण कुपित हो सकते हैं, परन्तु मेरी समझ में यही आया है। द्रौपदी के व्यक्तित्व और चरित्र में मुझे मिश्र की “क्लियोपैट्रा” की झलक मिलती है। इसी रूप में मैं द्रौपदी की समस्या को देख पाई हूँ।

पात्र

पुरुष पात्र :

अर्जुन	}	पाण्डवगण : महाभारत के प्रसिद्ध पात्र
युधिष्ठिर		
भीम		
नकुल		
सहदेव		

द्रुपद : पाञ्चाल जनपद के राजा और द्रौपदी के पिता ।

वेदव्यास : महर्षि कृष्णद्वैपायन, महाभारत व पुराणों के प्रणेता ।

धौम्य : पांडवों व पाञ्चालों के पुरोहित ।

प्रतिहारी, कंचुकी, नागरिक आदि ।

नारी पात्र :

द्रौपदी : पाञ्चाल जनपद की राजकुमारी—द्रुपद की पुत्री ।

सुभद्रा : भगवान् कृष्ण की बहिन और द्रौपदी की सखी ।

अशोकलता : परिचारिका

काञ्चना : „ „

—:—:—

प्रथम अङ्क

स्थान : पाञ्चाल जनपद की राजधानी काम्पित्य के राजप्रसाद
में कन्या-अन्तःपुर ।

काल : महाभारत युद्ध से कुछ वर्ष पहले ।

[अशोकलता और कांचना का प्रवेश । ये दोनों पाञ्चाल जनपद की राजकन्या द्रौपदी की परिचारिका हैं ; किन्तु राजकुमारी स्नेह के कारण इनके साथ सखियों जैसा व्यवहार करती हैं । अशोकलता अपने नाम के अनुकूल ही नाजुक और क्षण-क्षण में मुस्कराने वाली युवती है । कांचना की बोलचाल, चालढाल से अभिमान और गौरव टपकता है ।]

कांचना—हला, अशोकलता ! स्वयं वृहस्पति भी देवलोक से उतर आये तो भी हमारी सखी देवी द्रौपदी को शास्त्र और विद्या के वैभव में पराजित न कर सकेंगे ।

अशोकलता (हँसकर)—देवी द्रौपदी का तो कहना क्या स्वयं कांचनमणि भी अपराजिता है ।

कांचना (अभिमान से)—तो तू इसमें बुरा क्यों मानती है । देवी पाञ्चाली जब से द्वारिका से भगवान् श्री कृष्ण से कर्मयोग और वृहस्पति-नीति की शिक्षा ले कर आई हैं, तबसे सखियों को स्वः दीक्षित कर रही है । तू न सीख पाई तो इसमें मेरा क्या दोष ?

अशोकलता—कर्मयोग की जटिल गुथियाँ तू और तेरी देवी सुलझाएँ। अशोकलता तो संगीत, नृत्य और नाट्य की त्रिवेणी में आँख-कान मूँद कर गोते लगाना अधिक पसन्द करती है।

कांचना—तो फिर जा न नाट्यशाला में, रट भरत मुनि के नाट्य-शास्त्र के सूत्र और थिरक मृदंग की थाप पर।

अशोकलता—घबरा क्यों रही है। देवी के स्वयंवर समारोह में अशोकलता थिरकेगी भी और कोकिल कंठ से चहकेगी भी। तेरी बृहस्पति-नीति और कर्मयोग के पोथों को कौन पूछेगा ? अशोकलता तो रंग-नायिका है रंग-नायिका !

[कांचना कुछ कहना चाहती है पर शब्द मुँह में ही रुक जाते हैं। कंचुकी का प्रवेश। कंचुकी एक सफेद वस्त्र और पगड़ी धारी बूढ़ा ब्राह्मण है।]

कंचुकी (चिढ़ी हुई आवाज में)—अशोकलता, कांचनमणि ! कहाँ हो तुम लोग ?

दोनों—आर्य ये रहीं हम !

कंचुकी—महारानी सुदक्षिणा आज्ञा देती हैं कि हमारी प्यारी पुत्री कृष्णा का स्वयंवर-समारोह मध्याह्न से पहले ही आरम्भ हो जायगा, अतएव राजमहल की सब कुमारिकाएँ कृष्णा का रत्न श्रृंगार करें।

अशोकलता—तो हम लोग श्रृंगार-कक्ष चलें।

कंचुकी—राजपुत्री ने इच्छा प्रकट की है कि मैं प्रमोद-वाटिका में ही श्रृंगार कराऊँगी। मुझे नील आकाश की छाया में, सरोवर के तट पर जो आनन्द मिलता है—वह राजमहल के पाषाण-कक्षों में नहीं मिलता। इसलिये तुन लोग आभूषणों की पिटारी, कमल गन्ध मिश्रित आमलक चूर्ण उबटन और केश सज्जा के लिये सौगन्धिक तेल आदि सामग्रियाँ लेकर यहीं आ जाओ। राजपुत्री भी अपनी सखी यादव-कुल-कन्या, सुभद्रा देवी के साथ यहीं आ रही हैं।

दोनों (हर्ष से एक साथ)—क्या द्वारका से देवी सुमद्रा आ गई !

कंचुकी—भगवान् कृष्ण क्या पाञ्चाल राज के सम्बन्धी नहीं ? यदुवंश के सभी प्रतिष्ठित नेता पधारे हैं, फिर सुभद्रा देवी तो हमारी राजपुत्री की बाल-सखी हैं ।

दोनों—आर्य हम अभी सब काम करती हैं, चुटकियों में ।

[हर्ष से नाचती हुई सी विद्युत्वेग से जाती हैं ।]

कंचुकी—पशुपति रुद्र कुशल करें ! बड़े-बड़े महारथी वीर स्वयं-र यज्ञ में पधारे हैं ! कहीं ऐसा न हो कि लक्ष्य भेद को असम्भव मझ कर राजकुमारी के हरण में ही अपनी वीरता प्रदर्शित करें । एवंशी दुर्योधन, दुःशासन, गान्धारके राजपुत्र शकुनी, मद्रराज शल्य, पराज कर्ण, सिन्धुपति जयद्रथ, मत्स्यराज विराट् अपनी आयु और मन को भी भूलकर पधारे हैं । शिव ! शिव !! मुझे तो इस जमघट में जकुमारी कृष्णा की खर नहीं दिखती ।

[चिन्तित भाव से लाठी टेकता हुआ घूमता है ।]

नेपथ्य से—देवी ! इधर आइये ।

[राजकुमारी कृष्णा और सुभद्रा का प्रवेश—उनके पीछे कांचन-णि और अशोकलता सेविकाओं के साथ शृंगार पिटारियाँ लिये रही हैं ।]

राजकुमारी द्रौपदी का सौन्दर्य वर्णन सहज नहीं है । महाभारत र अन्य संस्कृत पुराणों के लेखक ने उस विषय में काफी प्रयत्न या है पर जिसकी सौन्दर्य सुधा को पी कर पांडव महावीर एकर ही अपनी चेतना को भुला बैठे थे, उसके रूप के विषय में ल संकेत मात्र ही दिये जा सकते हैं । प्रधान कौरव दुर्योधन, धुराज जयद्रथ, कीचक आदि महाभारत-कालीन-वीर उस की राशि की ज्वाला में पतंगे की तरह गिर कर भस्म हुए । महा-रत के अनुसार उसकी त्वचा नील कमल के समान उज्ज्वल और गंध थी । दोनों नेत्रों में विद्युत्प्रभा की तेज़ी थी । सुघड़ नाक,

कमान जैसी भौंहें, रक्त की उष्णता से जलते हुए से लाल अधर और ऐड़ी को छूने वाली सजल मेघ-सी केशराशि । जिस समय वह शंख जैसी गर्दन को मोड़ कर तीखी दृष्टि से किसी को देखती, उसकी आँखों के विद्युल्लिंग छिटक कर उस मनुष्य की आँखों को मानों जलाने लगते और वह उस ज्वाला से बचने के लिये सहम कर पीछे हट जाता । संक्षेप में इस रूपवती रमणी के रूप और दर्प के सामने मिश्र की महारानी क्लियोपेट्रा और मुगल मलिका नूरजहाँ भी फोकी पड़ जायेंगी । विद्युल्लता और अग्नि की लपट के समान उसका सौन्दर्य सिर्फ दूर से देखने की वस्तु है, स्पर्श करने पर जलने का डर है ।

सुभद्रा—यदुवंश के कर्ता-धर्ता श्री कृष्ण की छोटी बहिन—एक चंचल और भोली नवयुवती है । ऐसी नवयुवती जो केवल लाड़-प्यार में ही पनपती है, और निष्ठुरता के हलके थपड़े में ही मुरझा जाती । लता की तरह लचकीली और पराश्रिता । द्रौपदी को देख कर जिस तरह मेघ में छिपी हुई बिजली का आभास होता है, सुभद्रा को देख कर फूलों से लदी हुई लता का आभास होता है ।

द्रौपदी रंगमंच पर रखी हुई एक शिला पर झटके के साथ बैठ जाती है । दोनों ओठ मजबूती से जुड़े हुए हैं और भौंहें कुछ अधिक टेढ़ी हो रही हैं । मानो किसी गहन समस्या को सुलझा रही हों ।]

कांचनमाला (सुभद्रा से)—देवी, आप इधर विराजिये !

[दूसरी शिला की ओर संकेत करती है । सुभ । बैठ जाती है । दोनों अभी तक निस्तब्ध हैं ।]

अशोकलता (पिटारी से रत्नजटित कंठहार निकाल कर द्रौपदी के पास आती है)—देवी ! यह कंठहार देखिये । आपके महावीर ई धृष्टद्युम्न की पत्नी ने भेजा है, आपके शृङ्गार के लिये ।
(पास आकर गले में कंठहार बाँधती है ।)

कांचनमाला—ये कंगन आपकी मौसी विदर्भराज की पत्नी ने भेजे हैं, आपकी इन कोमल कलाइयों में.....

रूपकान्ति (सेविका)—यह मुक्ता मेखला आपकी क्षीण कटि में...

मल्लिका—ये नूपुर आपके चरणों में...

चम्पकलता—यह चूड़ामणी आपके केशों में...

[सब एक साथ द्रौपदी को आभूषण पहनाती हैं। उनका उतावलापन देखकर सुभद्रा खिलखिला कर हँसती है।]

सुभद्रा—हला, तुम सब आभूषण क्या एक साथ ही पहना दोगी ! देवी कहीं भागी तो नहीं जा रही है ?

[अब द्रौपदी विचार-निद्रा से जागती है। आभूषणों और सेविकाओं पर तीव्र दृष्टि। गले से कंठहार उतार कर फेंक कर...]

द्रौपदी—हला ! अशोकलता इन आभूषणों को उतार ले। इस कंठहार से मेरा दम घुटा जाता है।

अशोकलता—देवी ! महादेवी की आज्ञा है कि आपका नखशिख शृंगार किया जाय।

द्रौपदी—अशोक लतिके ! ऋषियों के बनाये धर्म-बन्धन में फँस कर मेरी आत्मा वैसे ही छटपटा रही है, तू चाहती है इन मुक्ताहारों और कंठहारों की फाँसी में मेरा शरीर भी छटपटाये।

कांचनलता—देवी, स्वयंवर महोत्सव में क्या हमारी राजकन्या अलंकारशोभा के बिना जायँगी ? मैं तो रो-रो कर प्राण दे दूँगी।

[द्रौपदी म्लान हँसी हँसती है।]

सुभद्रा—कृष्ण ! भैया की शिक्षा भूल गई क्या ? सुख-दुख, प्रकाश और छाया की तरह मनुष्य के जीवन पथ पर नाचते रहते हैं। मनुष्य वही है जो अपने पथ का निर्माण अपनी ही आत्म-ज्योति से करते हैं।

द्रौपदी—सुभद्रा बहिन ! मैं अपने मन को दुर्बल नहीं करूँगी। कांचन, अशोक ! ला शृंगार कर।

[दोनों द्रौपदी को सजाती हैं।]

सुभद्रा—पांचाली ! एक बात पूछती हूँ, बताओगी ?

द्रौपदी—मुझे मालूम है तू क्या पूछना चाहती है।

सुभद्रा—तुम्हें आर्यों में प्रचलित कौन-सी विवाह-पद्धति पसन्द है ? **स्वयंवर**—जैसे दमयन्ती ने नल अथवा इन्दुमती ने अज को वरण किया ?

द्रौपदी—जब यह संसार पुरुषों का है पगली, तो कैसा स्वयंवर ? याद नहीं है काशी-नरेश की कन्या अम्बा-अम्बिका-अम्बालिका का स्वयंवर ?

सुभद्रा—ठीक कहती हो सखी ! स्वयंवर तो सिर्फ एक नाम है ? यदि स्वयंवर में स्त्री की इच्छा का कुछ भी मूल्य होता, तो फिर लक्ष्य-भेद, धनुष-भंग की शर्तें ही क्यों लगाई जातीं ?

द्रौपदी—हम वर-माला लिये छटपटाती रह जाती हैं । जब हमारे दिल में अव्यक्त वेदना की टीसें उठती हैं, हम आँखों में आँसू पी कर हँसती हुई उस मनुष्य के गले में वरमाला डाल देती हैं, जिससे शायद हमारा अन्तर घृणा करता है । . . . (आँखों से चिनगारी छूटती है) . . . मैं यदि याज्ञसेनी पांचाली हूँ तो महावीर अर्जुन के सिवा किसी पुरुष के गले में अपनी वरमाला नहीं डालूँगी ।

सुभद्रा—बहिन ! मैंने जब सुना कि तुम स्वयंवर के लिये तैयार हो गई हो तो मुझ बड़ा आश्चर्य हुआ । (हँस कर) तुमने भी भाभी रुक्मिणी की तरह प्रेम पत्रिका लिख कर मध्यम पाँडव अर्जुन के पास न भेज दी !

द्रौपदी—देवी रुक्मिणी कितनी सुन्दरी, कितनी सुकुमार हैं ! उस लाजवन्ती-सी लचीली नारी को देख कर कोई कह सकता है कि बारात, सो भी सशस्त्र महारथियों की, दरवाजे पर खड़ी रही और वे इन महावीरों का उपहास करती हुई बैठ गईं अपने प्रियतम के रथ में !

सुभद्रा—भाभी ने सचमुच स्त्री जाति के लिये एक नया ही मार्ग खोल दिया । मेरा भी जी करता है कि मैं भी अपनी भाभी की तरह... (सहसा लज्जित हो कर चुप हो जाती है ।)

द्रौपदी (हँस कर)—पूरी बात क्यों नहीं कही ? मुझे तो बड़ी ही घृणा होती है, जब मैं स्वयंवर का उपहास होते देखती हूँ । या तो कोई स्वयंवर सभा की शर्तें पूरी करके हमें उठा ले जायगा या फिर उठाई तलवार, हमें रखा रथ में और जूझ पड़े आपस में भेड़िये की तरह । मानों हम स्त्री न हुईं मांस खण्ड हैं ! (फिर आँखों से बही बिद्युत्तिलग छिटकने लगते हैं ।)

सुभद्रा (सहम जाती है)—पांचाली, मुझे तो डर मालूम देता है तुम स्वयंवर सभा में कुछ कर तो न बैठोगी ? (द्रौपदी के गले में एक हाथ डाल कर दूसरे से उसकी पीठ थपथपाती है । मानों उसे समझा रही हो ।)

द्रौपदी (भाववेश में उसे धकेल कर)—दूर हट कायर कहीं की, यह डर तू अपने स्वयंवर के लिये संचित रख । पांचाली तो रणचण्डी दुर्गा देवी के पदचिह्नों पर चलती है । जब असुरराज शम्भु न अपने दूत से दुर्गा देवी को सन्देश भेजा कि संसार में जितने भी रत्न हैं उनके भोगन वाले हम हैं, हम तुम्हें स्त्री रत्न मानते हैं इसलिये तुम्हारे ऊपर हमारा अधिकार है तब देवी न क्या उत्तर दिया था ?

सुभद्रा—यह तुम कहाँ से कहाँ जा रही हो !

द्रौपदी (नेत्र मूँद कर गम्भीर स्वर में मानों देवी स्वयं सामने खड़ी हों)—

यो मां जयति संग्रामे यो मे गव व्यपोहति

यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।'

(कंचुकी से तलवार निकाल कर)—यदि पुरुष हमारी इच्छा-अनिच्छा का ध्यान नहीं रखना चाहते तो यह रक्त की प्यासी खड्ग उन्हें दिखा देगी कि...

[सुभद्रा व्यंग से हँसती है]

(नेपथ्य से आवाज आती है)—सुन्दरी ! हम पुरुष तो वैसे ही तुम्हारे मदमाते तिरछे कटाक्षों से बिंधकर तड़प रहे हैं, फिर इस खड्ग धारण करने की कोई आवश्यकता है ?

[सुभद्रा और द्रौपदी चकित हो कर देखती हैं । सुभद्रा मुस्कराती है मानों उसे यह बात बहुत पसन्द आई है ।

सहसा लताकुंज से एक नवयुवक निकलता है । ऊँचा कद, साँवला सुगठित शरीर, धनुषकोटि की तरह मुड़ी हुई मूँछें, उसके मुँह पर व्यंग और उपहास की मुस्कान कुछ इस तरह छाई हुई है मानों किसी ने गुदगुदा दिया हो । हँसी अधरों पर फूटी पड़ रही है ।]

युवक (कृत्रिम गम्भीरता से)—पांचाली देवी ! आप पुरुषों से बहुत रुष्ट दिखाई देती हैं । लीजिये, पुरुषों को हराने का एक सरल उपाय बताता हूँ । (चपलता से द्रौपदी की पीछे लटकती हुई लम्बी चोटी पकड़ कर, उससे अपने हाथ बाँध देता है । फिर घुटने टेक कर)—यह देखिये, पुरुषों का प्रतिनिधि मैं स्वयं आप का दास बनकर उपस्थित हूँ । (फिर पीछे मुड़ कर सुभद्रा से)—देवी ! आपकी सखी ने तो मुझे बाँध दिया है केशपाश से और आप छोड़िये नयन बाण ! हम भी तो देखें बन्दी कहां भाग कर जाता है ?

[यह सब काम युवक इतनी तेजी से करता है कि दोनों युवतियाँ सकते में आ जाती हैं । पर इस अद्भुत दृश्य को देख कर सुभद्रा हँसी नहीं रोक पाती ।]

युवक—ओह आप तो हँस पड़ीं ! भला हँसने की कौन-सी बात थी ? (अचानक सुभद्रा का हाथ पकड़ कर द्रौपदी के आकुंचित भौंहों पर फेरता है ।)

युवक (सुभद्रा से)—यह लीजिये, अब भी आपकी सहेली मुझसे रुष्ट है ।

सुभद्रा—मान लीजिये श्रीमान् !

युवक (द्रौपदी की ठोड़ी अपनी उंगलियों से ऊपर कर)—
सुन्दरी ! भीरु !!

सुभद्रा (नकली क्रोध में)—कौन हैं आप जो पांचाल की शास्त्र-विशारदा राजकन्या को सुन्दरी और भीरु कह कर सम्बोधित कर रहे हैं ? बड़ा साहस है आप का !

[द्रौपदी अब भी पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी है । सुभद्रा द्रौपदी को झझकोरती है । द्रौपदी मानों होश में आती है—युवक से दूर हटने की चेष्टा करती हुई; पर युवक दृढ़ता के उस की कलाई पकड़े रहता है ।]

द्रौपदी—कौन हैं आप, जो पुरुषों का पालतू लेने पांचाल देश की राजकन्या के अन्तःपुर में घुस आये हैं ? (कलाई छुड़ाने की कोशिश करती है ।)

युवक (उपेक्षा से हाथ छोड़ कर)—देवी ! हम आपको केवल यही बताना चाहते हैं कि हम पुरुष जो कुछ करते हैं नारी ही के लिये करते हैं । स्त्री की याचना उसकी सलज्ज मुस्कान में छिपी रहती है । वह अपनी विशाल आँखों पर बरौनियों का घूँघट डाल मन्द-मन्द मुस्काती है और सिर झुका लेती है । हम पुरुष समझ जाते हैं कि वह क्या चाहती है ।

[द्रौपदी को बरबस हँसना पड़ता है ।]

द्रौपदी—अद्भुत मनुष्य है आप !

युवक—किन्तु पुरुष ऐसा नहीं करता । वह छीनकर झपटकर अपनी प्राप्य वस्तु पा लेता है । देवी ! आप पुरुष जाति को क्यों दोष देती हैं, यह तो प्रकृति का नियम है ।

द्रौपदी—कभी नहीं । यह तुम लोगों की बनाई परम्परा है ।

युवक—प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है ।

[क्रोध कर द्रौपदी को अपने बाहु-पाश में बाँध लेता है, सुभद्रा आ कर युवक को रोकती है ।]

सुभद्रा—आर्य अर्जुन, यह आप क्या अनर्थ कर रहे हैं ? अभी तो देवी ने स्वयंवर में आपको वरण भी नहीं किया ।

[अर्जुन का नाम सुन कर द्रौपदी काँपने लगती है । भावावेश में मस्तक पर पसीने की बूंदें छलकने लगती हैं ? “.....वह कौन ? मेरे महारथी, वीर, मेरे अर्जुन !” कह कर पृथ्वी पर गिरना चाहती है कि अर्जुन अपनी भुजाओं में उसे संभाल लेते हैं ।]

सुभद्रा—बहिन ! मूर्च्छा तुम्हारी जैसी तेजस्विनी स्त्री को शोभा नहीं देती । मैं जल लाती हूँ ।

[द्रौपदी अपने को संभाल कर खड़ी हो जाती है । सुभद्रा जाती है । ...नेपथ्य से नगाड़ों की आवाज सुनाई देती है ।]

(नेपथ्य से)—कांचन ! अशोक ! कृष्णा का शृंगार समाप्त करो । स्वयंवर सभा में नगाड़े बज रहे हैं, जल्दी करो ।

[दोनों अनराग से एक-दूसरे की तरफ देखते हैं ।]

पटाक्षेप ।

द्वितीय अंक

(विष्कम्भक)

स्थान : काम्पिल्य का चतुष्पथ ।

[दो नागरिक आपस में बात कर रहे हैं । रंगमंच के पिछले हिस्से में चतुष्पथ से थोड़ी दूरी पर काम्पिल्य का क्रीड़ोद्यान दिखाई दे रहा है ।]

पहला नागरिक—मित्र देवक ! तुमने कुछ सुना ?

दूसरा नागरिक देवक—हाँ हाँ, सुना क्या अपने आँखों से देखा है । शूरवीर और महारथी राजाओं की भरी सभा में एक ब्राह्मण लक्ष्यभेद करके क्षत्रिय राजकुमारी का स्वामी बन बैठा । अब बेचारी पांचाली कौशेय वस्त्र उतार कर मृग चर्म पहन भिक्षा का अन्न पकाया करेगी । हाय रे भाग्य ! (माथा ठोक्ता है ।)

पहला—तो तुमने सुना है अपना सिर । अरे क्षत्रबन्धो ! वह ब्राह्मण है महावीर धनुर्धर सव्यसाची अर्जुन । सुना तुमने लाक्षागृह की अग्नि से बचे हुए अर्जुन ने ही कुमारी पांचाली को प्राप्त किया है ।

दूसरा—तब तो हमारे महाराज की चिरकाल की कामना पूरी हो गई ।

पहला—पहले तो महाराज बहुत घबड़ाये कि यह क्या हुआ ? देवी लोपामुद्रा और रेणुका की तरह कहीं कुमारी पांचाली भी भूरी दाढ़ी वाले ऋषियों के भिक्षा पात्र में चली गई ।

दूसरा (गर्व से)—किसी भिक्षुक की हिम्मत है जो हमारी राजपुत्री को भिक्षा पात्र में रख कर ले जाय। दावाग्नि देखी है कभी—बस वह दावाग्नि ही है हमारी कुमारी कृष्णा के रूप में।

[कुछ नागरिक तेजी से चतुष्पथ पर कानाफूसी करते हुए आते हैं। 'नहीं उचित नहीं है', 'अधर्म है', 'पर ऐसा पहले भी तो हुआ है', आदि धीमी और अस्पष्ट आवाजें आती हैं। ये लोग आपस की बातों में इतने व्यस्त हैं कि इन दोनों नागरिकों की ओर ताकते तक नहीं है। कुछ क्षणों तक रंगमंच पर काफी शोर-गुल सा मचता है।]

पहला नागरिक (जोर से)—भाइयो ! क्या हुआ ? क्या अनुचित है हमें भी तो बताओ।

भीड़ में से एक नागरिक—सुना है स्वयंवर सभा में लक्ष्यभेद तो किया है मंजले पांडव अर्जुन ने और राजकुमारी पांचाली से विवाह करना चाहते हैं धर्मराज युधिष्ठिर।

पहला नागरिक—वाह रे, धर्मराज ! लग गया कामदेव का बाण।

दूसरा नागरिक—पर यह तो क्षत्रिय धर्म की व्यवस्था के विरुद्ध है।

तीसरा—तो महारथी अर्जुन क्या कहते हैं ?

चौथा—गृहकलह के डर से अभी तक तो चुप हैं।

दूसरा—कहीं भाइयों भाइयों में बज न जाय।

पांचवाँ—इसी धर्म संकट में पड़कर महाराज द्रुपद ने शास्त्रों के प्रणेता महर्षि वेदव्यास को बुलाया है। आज मध्याह्न में धर्मसभा होने वाली है, हम राज सभा के फाटक पर खड़े होकर निर्णय सुनेंगे। वही चलते हैं।

[सब कोलाहल करते हुए जाते हैं।]

द्वितीय अंक

[महाराज द्रुपद का मन्त्रणा-गृह । गृह के वातायन बन्द हैं । धुंधला-सा प्रकाश छा रहा है । एकान्त और निस्तब्धता !

रंगमंच पर एक ओर पाँचों पाण्डव अलग-अलग सिंहासनों पर बैठे हैं । दूसरी ओर के आसनों पर मृगचर्म बिछे हुए हैं और धौम्य आदि ऋषि बैठे हुए भोजपत्रों के बने ग्रन्थ के पन्ने उलट रहे हैं । बीच में एक राज-सिंहासन रखा है । पास में ही एक मृगचर्म मंडित सिंहासन रखा है । द्वार पर प्रतिहारी आवाज देता है—

“धर्म मर्यादा के रक्षक, पांचाल देशों के अधिपति महाराज द्रुपद चारों वेदों के सम्पादक, पुराणों के प्रणेता प्राचीन ऋषि वेदव्यास के साथ पधारते हैं । सावधान !”... (बाहर नगाड़े पर चोट ।)

द्रुपद और वेदव्यास का प्रवेश । पाण्डव प्रत्युत्थान देते हैं । ऋषि गण हाथ उठा कर आशीर्वाद देते हैं ।]

द्रुपद (चिन्तित मुद्रा में वेदव्यास के साथ बैठकर)—महर्षे ! मुझे धर्म संकट से उबारिये ।

धौम्य (पुस्तक के पन्ने खोल कर पढ़ते हुए)—महाराज ! क्षत्रिय धर्म के अनुसार महावीर अर्जुन ने स्वयंवर की शर्तें पूरी करके द्रौपदी को प्राप्त किया है, इसलिये पांचाली अर्जुन की है ।

धर्मराज (मृदु किन्तु सारगर्भित आवाज में)—ऋषिवर ! पाणिग्रहण संस्कार से पहले कन्या किसी की नहीं होती ।

• नकुल-सहदेव—ठीक है, ठीक है !

वेदव्यास (तीक्ष्ण स्वर से)—धोम्य ! धर्म की गति बहुत सूक्ष्म है ।

[फिर निस्तब्धता !]

वेदव्यास (युधिष्ठिर से)—धर्मराज ! तुमने धर्मशास्त्रों का सांगोपांग अध्ययन किया है । तुम्हीं बताओ तुम कैसे दूसरे के द्वारा जीती हुई स्त्री की कामना करते हो ?

युधिष्ठिर—ऋषिराज ! धर्म की परिधि समय के अनुसार घटती बढ़ती रहती है । धर्म कभी स्थिर नहीं है । कभी एक पत्नीव्रत धर्म हो जाता है तो कभी दूसरा विवाह आवश्यक हो जाता है । कभी धर्म ब्रह्मचर्य में स्थिर हो जाता है तो कभी सन्तान उत्पन्न कर पितृ ऋण उतारने में । कभी अनुराग, और कभी त्याग में । महाराज कौन कह सकता है कि धर्म क्या है ?

सहदेव—माता कुन्ती की बताई हुई कुलमर्यादा के अनुसार कुरुकुल में आनेवाली पहली कन्या राज्यलक्ष्मी की तरह ज्येष्ठ भाई की सम्पदा होती है । अतः महाराज कुमारी द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर की है ।

[भीम की भौहें उठ जाती हैं और अर्जुन ओठ काटने लगता है । उसका हाथ तत्काल गांडीव पर जाता है ।]

अर्जुन (तड़प कर उठ बैठता है—तीर निकाल कर और प्रत्यंचा पर चढ़ा कर)—महाराज ! द्रौपदी न केवल मेरी स्वयंवरा है बल्कि मेरी प्रेयसी भी है । मैं द्वन्द्व-युद्ध की अनुमति चाहता हूँ ।

[दोनों—युधिष्ठिर और अर्जुन—धनुष पर तीर चढ़ा कर एक-दूसरे के सामने खड़े हो जाते हैं । दोनों की आँखें चढ़ी हुई हैं । धनुष टंकार की आवाज !...]

सहसा भीम-नकुल-सहदेव आसन छोड़ कर कूद पड़ते हैं और दोनों के हाथ से धनुष खींच कर अलग-अलग करते हैं । ऋषि-गण भी 'शान्तं पापं', 'शान्तं पापं' कहते हैं ।]

भीम—भाई अर्जुन ! यह तुम क्या कर रहे हो क्या गृह-युद्ध करोगे ?... (युधिष्ठिर से)—आर्य शान्त होइये । इतना विचलित होना आप जैसे धर्मज्ञ को शोभा नहीं देता ।

[दोनों अपराधी की मुद्रा में अपने आसनो पर बैठ जाते हैं ।]

वेदव्यास—शार्ङ्गपाणे ! कैटभारे ! एक रक्तमांस की बनी नारी लिये यह रक्तपात, यह गृहयुद्ध ! (कानों पर हाथ रखते हैं ।)

[द्रुपद इस तरह बैठा है, मानों उसके शरीर में रक्त ही हीं रहा ।]

[कांचनमाला का प्रवेश ।]

कांचनमाला (द्रुपद को प्रणाम करके)—महाराज ! हमारी देवी ण्णा पूछती हैं—‘पूज्य पिता जी ! मैं ने सुना है, आप मेरे विवाह के म्वन्ध में ऋषियों की धर्मव्यवस्था ले रहे हैं, सो क्या मैं आ कर ण्णियों को अपना मत दे सकती हूँ ।’

द्रुपद—कांचनमाला ! धर्ममन्त्रणा में कुमारियाँ नहीं आती हैं । ण्णा ने कह दे कि हम उनके गुरुजन हैं । जो कुछ कर रहे हैं सके कल्याण के लिये ही कर रहे हैं ।

वेदव्यास—धर्ममन्त्रणा ऋषि करते हैं, पुरुष करते हैं—अन्तःपुर रहनेवाली कन्याएँ नहीं ।

एक ऋषि—शिव, शिव ! महाराज आपने अपनी पुत्री को े कैसी शिक्षा दिलाई है । ऐसी उद्दंडता स्त्री जाति को शोभा हीं देती । धर्ममन्त्रणा और स्त्री ! शिव, शिव ! !

कांचनमाला—जो आज्ञा महाराज ! मैं आप का सन्देश देवी को ना देती हूँ ।

[कांचनमाला का प्रस्थान ।]

[फिर कुछ क्षणों के लिये रंगमंच पर चुप्पी । केवल पुस्तक ; पन्ने पलटने और अर्जुन के तेजी से सांस लेने की आवाज़...]

[अशोकलता का प्रवेश ।]

अशोकलता (प्रणाम करके)—महाराज ! देवी कहती हैं—‘चूँकि न्त्रणा मेरे विषय में ही हो रही है और मैं पृथ्वी के टुकड़े और र्णों के आभूषण की तरह कोई प्राणहीन वस्तु नहीं हूँ; अतः मुझे

पूरा अधिकार है कि मैं मन्त्रणा में अपना मत दे सकूँ। इसके अति रिक्त महाराज हमारी देवी केवल एक प्रश्न पूछना चाहती हैं।

द्रुपद—अशोकलता ! अपनी देवी से कह दे व्यर्थ में हठ न करें

वेदव्यास—मैं फिर कहता हूँ, स्त्री को धर्म-शास्त्र में स्वतन्त्र मत रखने का अधिकार नहीं है।

अशोकलता—तो मैं देवी को यही उत्तर दे दूँ....(जाने लगती है।)

[अर्जुन यह धर्म-व्यवस्था का ढोंग नहीं सह पाता, वह उठ खड़ा होता है।]

अर्जुन—भद्रे ! अपनी देवी से कह—तृतीय पांडव अर्जुन कहते हैं, आपको सभा में आ कर अपना मत देने और प्रश्न पूछने का पूरा अधिकार है। वे आयें, हम ससम्मान उनके प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हैं।

अशोकलता—अनुगृहीत हुई छोटे महाराज !

[जाती है।]

ऋषि इत्यादि (सब एक साथ)—अनर्थ है ! अनर्थ है !! ऐसा नहीं होना चाहिये।

[भयंकर कोलाहल !]

द्रुपद (सब को शान्त करते हुए)—ब्राह्मण गण शान्त होइये ! यदि लड़की की ऐसी ही इच्छा है तो कृपा करके उसे आने दीजिये। बाल-हठ ही सलज्ज लीजिये।

वेदव्यास (व्यंग्य से हंसते हुए)—बाल-हठ ! हा...हा...हा !! अच्छा, खैर आने दो।

[सुभद्रा के साथ द्रौपदी का प्रवेश।]

[द्रौपदी की मुख मुद्रा अत्यधिक गम्भीर है। ओठ भिचे हुए, आँखों से वही विद्युत् स्फुल्लिंग छिटक रहे हैं। वह गहरे लाल रंग की साड़ी पहने है और लाल ही कंचुकी है, जिस पर सुनहरा काम हो रहा है—लगता है मानों धधकती हुई अग्नि-ज्वाला

सभा में प्रवेश कर रही है। सुभद्रा द्रौपदी का पीछे लटकता हुआ साड़ी का पल्ला पकड़ कर आती है।]

द्रौपदी (सभा के बीच में आ कर ऋषियों और पिता को प्रणाम करके)—पिता जी !... (आवाज भरती जाती है ।)

सुभद्रा—महाराज ! देवी पांचाली आर्य पांडव-गण से केवल एक प्रश्न पूछना चाहती है ।... (द्रौपदी से)—पूछो बहन ।

द्रौपदी (जलते हुए स्वर से पांडवों की ओर मुंह करके)—मैं केवल यह पूछना चाहती हूँ कि मैं किसकी हूँ ?

[युधिष्ठिर के पास आती है ।]

युधिष्ठिर से—आर्य युधिष्ठिर ! आप बताइये मैं किस की हूँ ?

युधिष्ठिर (घबरा कर)—देवी ! कुल-मर्यादा और हमारी माता आर्या कुन्ती की आज्ञानुसार आप के ऊपर मेरा पूर्ण अधिकार है ।

द्रौपदी (व्यंग्यपूर्ण विनय से झुक कर)—ठीक कहा महाराज ! (भीम की ओर मुड़ कर)—आर्य ! आप कहिये मैं किस की हूँ, आप की ?

भीम—न, न देवी ! तुम्हें आर्य युधिष्ठिर ले लें, चाहे अर्जुन; मेरी तो हिडिम्बा रानी है—मेरी मेघ श्यामला सुन्दरी ।

द्रौपदी (मधुर स्वर से)—आर्य अनुगृहीत हुई मैं। (अर्जुन की ओर आँखें नीची कर के)—आर्यपुत्र आप बताएँ ?

अर्जुन (द्रौपदी का हाथ पकड़ कर)—देवी ! तुम्हारा सम्बोधन ही कह रहा है कि तुम अपने को मेरी मानती हो ।... (आवेग से) —देवी ! तुम मेरी हो और मेरी रहोगी । मेरे इस तीक्ष्ण शर की नोक जगत को बता देगी कि तुम मेरी प्रेयसी और स्वयंवरा हो ।

द्रौपदी (हाथ छोड़ा कर रुखे स्वर से)—आर्यपुत्र, उचित ही कहा आपने !... (मुड़कर नकुल-सहदेव से)—आप दोनों बतायें, मैं किस की सम्पत्ति हूँ—आप दोनों की ?

दोनों (एक साथ इस प्रकार बोल पड़ते हैं, मानो कुछ समय में न आया हो)—ऐं, ऐं ! देवी, देवी !!

द्रौपदी (व्यंग्य से)—धन्यवाद श्रीमान् !

[तेजी से मुड़ कर द्रुपद के राजसिंहासन के समीप पहुँचती है ।]

द्रौपदी—उद्वंडता के लिये क्षमा मागती हूँ, पिता जी ! पर बताइये मैं किस की हूँ ?

द्रुपद—बेटी ! पाणिग्रहण से पहले पुत्री सर्वथा पिता की होती है ।

द्रौपदी—पिता जी, बिल्कुल सही कहते हैं आप !

[वह सहसा मुड़ कर पिता की दाईं ओर बैठे हुए वेदव्यास की ओर रुख करती है और पृथ्वी पर घुटने टेक कर प्रणाम करती है ।]

(व्यंग्यपूर्ण विनय से)—ऋक्, यजुः, साम, अथर्व चारों वेदों के सम्पादक, अट्ठारह पुराणों के रचयिता, ब्रह्मसूत्रों के प्रणेता, क्षीर-शायी विष्णु के प्रज्ञावतार, तपस्विवर द्वैपायन महाराज ! क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि आप के धर्मशास्त्र इस विषय में क्या कहते हैं ?

वेदव्यास—मैं ने अपने ग्रन्थों में व्यवस्था दी है कि....!

सुभद्रा (बनावटी विनय से)—प्रभो ! भला कहीं तुच्छ स्त्री-जाति को अधिकार है आप के धर्मशास्त्र पढ़ने का ?

वेदव्यास—भूल हुई मुझ से । इन धृष्ट कन्याओं को देख कर तो मुझे प्रतीत होता है कि नारी जाति को धर्मशास्त्रों के अध्ययन से वंचित रख कर मैंने बड़ी भूल की थी । खैर इस भूल का प्रायश्चित्त अब एक ग्रन्थ लिख कर करूँगा । वह ग्रन्थ स्त्री, शूद्र आदि सभी पढ़ेंगे ।

सुभद्रा—तो आप की निगाह में स्त्री जाति की गणना शूद्रों में है ? ... (व्यंग्य से)—मैं भूत भविष्य की समस्त नारी जाति की ओर से आपको धन्यवाद देती हूँ !

द्रौपदी (किंचित् हंस कर)—हला सुभद्रे ! तू तनिक चुप तो रह ।
...(वेदव्यास से)—प्रभो ! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिये । ,

महर्षि वेदव्यास—राजकुमारी ! स्त्री सदा ही पुरुषों की सम्पत्ति है, पर यहाँ विचारणीय यह है कि किस पुरुष को यह अधिकार मिलना चाहिये ?

द्रौपदी—प्रभो ! आप ठीक ही कहते हैं, स्त्री के ऊपर पुरुष के सर्वाधिकार सदा ही सुरक्षित हैं । . . . (सभासदों की ओर मुँह करके)—माननीय सभासदो ! अपने ही प्रश्न का उत्तर देने का साहस कर सकती हूँ मैं ?

[सभा में फिर भारी कोलाहल ! 'अवश्य, अवश्य !' 'कदापि नहीं', 'यह क्या उपहास है ?' आदि, आदि आवाजें ।]

सुभद्रा (सब को शान्त करते हुए)—आप लोग कृपा कर के शान्त रहिये । देवी को अपना निर्णय देने का पूरा अधिकार है ।

[निस्तब्धता !]

द्रौपदी—तो सुनिये, मैं किसी की नहीं हूँ । मैं स्वयं अपनी हूँ । . . . (युधिष्ठिर से)—महाराज ! मैं भूमिखण्ड नहीं हूँ, जो न्यायालय की शरण लेने से मिल सकूँगी । . . . (अर्जुन से)—आर्य ! आप को भी कुछ भ्रम हुआ है । स्त्री का प्रेम याचना से मिलता है, गांडीव की टंकार से या लक्ष्य से नहीं ।

[दोनों तेजी से रंगमंच से जाती हैं । सब विस्मय से एक-दूसरे की ओर देखते हैं ।]

पटाक्षेप ।

तृतीय ७'क

[रंग-भवन का क्रीड़ागार । बीच में एक स्वर्ण हिंडोल । हिंडोल पर हरी कौशेय की गद्दी और मसनद । दीवारों पर पौराणिक और वैदिक देवताओं के भित्ति-चित्र । पृष्ठभूमि में तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, प्रेयसी-वर्गा आदि अप्सराओं की मूर्तियाँ विभिन्न नृत्य-मुद्राओं में । एक ओर अशोकलता बैठी बड़े ध्यान से बीणा के तार मिला रही है । बीच-बीच में पलक उठा कर द्रौपदी की ओर देख लेती है । द्रौपदी तारक-जटित नील वर्ण अन्तरीय पहने है और श्वेत कौशेय का उत्तरीय वक्ष पर लहरा रहा है । घुंघराली अलकें उसके माथे पर नाग-कन्याओं की तरह घिर रही हैं । वह मसनद के सहारे हिंडोल पर आधी लेटी आधी बैठी अवस्था में है । सुभद्रा भी उसी हिंडोल पर बैठी हुई है । उस का परिधान हरा है । वह एक पट-चित्र देख रही है । चित्र संभवतः धनुर्धर अर्जुन का है । कांचनमाला रंग-भवन के पर्दों को संभाल कर रख रही है ।]

कांचनमाला (पर्दे एक ओर रख कर)—देवी ! अशोकलता आपके विवाह उत्सव पर 'उर्वशी-जन्म' नाम की नृत्य-नाटिका प्रस्तुत करना चाहती थी । नर-नारायण ऋषियों को रिझाने के लिये इन्द्र के द्वारा भेजी हुई अप्सराओं की भूमिका के लिये इसने रंग-भवन की नर्तकी बालाओं को भाव और मुद्राओं की शिक्षा देते-देते थका

डाला। स्वयं भी उर्वशी नृत्य का अभ्यास करते-करते इसे महीनों हो गये।

सुभद्रा (एक पर्व की ओर संकेत करके)—अच्छा, इसलिये यह तुषार मंडित हिमालय शिखर और अलका का प्रवल उछलता हुआ स्रोत दिखाई दे रहा है इस पट दृश्यावली में ! नर-नारायण ऋषियों का वदरिकाश्रम है यह ?

कांचनमाला—हाँ देवि ! और इस की एक सूझ सुनी आप ने।

अशोकलता (हाथ हिला कर मना करती हुई)—अरी ! चुप भी रह।

कांचन—नर-नारायण ऋषियों की भूमिका के लिये यह स्वयं नीलकान्ति भगवान् कृष्ण और महावीर अर्जुन से प्रार्थना करने वाली थी कि....

सुभद्रा—कि तुम्हारी देवी ने सब गुड़ ही गोबर कर दिया।

[द्रौपदी के अतिरिक्त सब खिलखिला कर हंसती हैं। वह उसी प्रकार पृथ्वी पर अपने पैर की ठोकर लगाती हुई हिंडोल को गति दे रही है।]

सुभद्रा—पांचाली ! तूने ठीक नहीं किया। उन महारथी वीरों पर तुम्हारे दर्प का कही उलटा असर न पड़ा हो ?

द्रौपदी (गर्व से अधर दंशन करती हुई)—सुभद्रे ! कभी दीप-शिखा देखी है जलती हुई ?

सुभद्रा—हाँ हाँ, और देखा है सहस्रों पतंगों का आनन्द से नृत्य करते हुए उस ज्वाला का आलिंगन करके प्राणों को होम करना।

द्रौपदी (अपनी अलकों को पीछे झटक कर दर्प से)—तू देखती रह। मेरी इस प्रज्वलित रूप-राशि की ज्वाला में इस युग के बड़े-बड़े प्रतापी क्षत्रिय और राजन्यगण पतंगों की तरह गिर कर भस्म होंगे।

(गर्व से उठकर टहलती है।)

*अशोकलता (कांप कर)—देवी ! मुझे तो आप से भय लगता है।

द्रौपदी (उसी प्रकार)—मैं अन्तःपुर में नाच-गा कर पुरुषों का खिलौना बननेवाली स्त्री नहीं। मैं समुद्र मेखला पृथ्वी को अपने बाहुबल से जीतनेवाले महारथी वीरों को अपना क्रीड़ा मृग बनाने की आकांक्षा रखती हूँ।

सुभद्रा—सो तो ठीक है बहन ! भैया कृष्ण भी कहते हैं कि एक दिन राजसूय यज्ञ में सप्ततीर्थों के जल से पांचाली की आजानु आलम्बित केशराशि गीची जायगी और पृथ्वी के समस्त राजा उसके चन्द्रकान्तमणि से उज्ज्वल चरण-नखों को चूमेंगे। पर मैं तो इस समय महावीर अर्जुन का पूछती हूँ, कहीं वे रुष्ट हो गये तो ?

द्रौपदी—जब मनुष्य छाया के पीछे भागता है तो छाया उसके आगे-आगे भागती है और पकड़ में नहीं आती। जब वह छाया का तिरस्कार कर उससे मुह मोड़ कर चलता है तो छाया उसके पीछे चलती है। यही है पुरुष और स्त्री के परस्पर आकर्षण का रहस्य। जब स्त्री पुरुष के पीछे भागती है तो पुरुष उससे दूर भागता है; लेकिन जब वही निष्ठुरता से उसे ठुकरा कर अपनी राह पर चल पड़ती है तो पुरुष उससे चरणों पर गिर कर उसे रोकने की चेष्टा करता है। देख सुभद्रा, अभी थोड़ी देर में तू आर्य युधिष्ठिर और आर्य अर्जुन को इस रंगभयन में देखेगी।

सुभद्रा—बहिन ! मेरी कामना तो यही है, पर आर्य अर्जुन का प्रणय और आर्य युधिष्ठिर का आग्रह ! यह गुत्थी कैसे सुलझेगी ?

द्रौपदी (आत्मविश्वास से)—हन्ता, काचनमणि ! आज से एक शताब्दी पहले पांचाल की प्रजा में क्या प्रथा थी ?

काचन (साभिप्राय मुस्करा कर)—वही जो उत्तर में किन्नर गणों में आज भी है।

द्रौपदी (हंस कर)—तू ठीक सामझी।

[प्रतिहारी का प्रवेश।]

प्रतिहारी—देवी ! मध्यम पाण्डव अर्जुन रंगशाला के द्वार पर खड़े हैं। प्रवेश की अनुमति चाहते हैं।

[द्रौपदी और सुभद्रा एक-दूसरे की ओर देख कर हंसती हैं ।]

सुभद्रा—जा, उन्हें ससम्मान ले आ ।

[अर्जुन का प्रवेश । द्रौपदी और सुभद्रा प्रत्युत्थान देती हैं ।]

द्रौपदी—आर्य ! स्वागत करती हूँ, विराजिये !

अर्जुन (बैठ कर)—देवी ! एकान्त चाहता हूँ ।

[कांचन और अशोक सिर झुका कर जाती हैं । सुभद्रा जाने लगती है, पर द्रौपदी उसे रोक लेती है ।]

अर्जुन—देवी ! आप को शायद आश्चर्य हो, मैं अपने कल के व्यवहार के लिये क्षमा याचना करने आया हूँ ।

द्रौपदी (सिर झुका कर)—आर्यपुत्र ! बड़े क्षमा माँगते नहीं, देते हैं ।

अर्जुन—देवी ! तुम्हारे अमूल्य प्रणय की याचना करने आया हूँ ।

द्रौपदी—आर्य ! गांडीव कहाँ छोड़ आये ?

अर्जुन—देवी ! अधिक लज्जित न करो । (खिन्न स्वर से) देवी ! एक ओर तो पूज्य भार्गव की इच्छा और उन का सम्मान, दूसरी ओर प्रेयसी का अनुराग प्राप्त करने की तीव्र कामना—उस संघर्ष की घुटन से तो आत्महत्या कही अच्छी है ।

द्रौपदी (विरक्त से)—आर्यपुत्र ! पांचाली नवयुवकों को आत्महत्या के लिये प्रेरित करने वाली नहीं, उन को जीवन-शक्ति देने वाली संजीवनी के नाम से प्रगिद्ध होता चाहती है ।

अर्जुन—तो फिर देवी तुम्हीं सुलझाओ यह गुत्थी । मैं गृह-कलह से बचने के लिये तुम्हारी शरण लेता हूँ ।

द्रौपदी (गम्भीरता से)—आर्यपुत्र ! दो स्त्रियाँ हैं—एक स्त्री वह है, जो मन से केवल अपने प्रियतम पति से प्रेम करती है; पर दुर्भाग्य वश उसके शरीर पर अन्य किसी दूसरे का अधिकार हो जाता है । दूसरी स्त्री वह है, जो सुविधा न मिलने के कारण शरीर से पवित्र है; पर उसके मन में हमेशा पर-पुरुष का ध्यान रहता है ! आप इन दोनों में किस का पक्ष लेंगे ?

अर्जुन—देवी ! यह प्रश्न जटिल है, फिर भी मैं तो प्रथम स्त्री की प्रशंसा करूँगा ?

द्रौपदी—तब आर्यपुत्र मैं आपका प्रणय स्वीकार करती हूँ ।

[अर्जुन के मुख से सन्तोष प्रकट होता है । प्रतिहारी का प्रवेश ।]

प्रतिहारी—देवी ! ज्येष्ठ पांडव महाराज युधिष्ठिर पधारते हैं ।

द्रौपदी—महाराज को उचित सम्मान के साथ राह दिखा भद्र !

[अर्जुन बेचैनी से खड़ा हो जाता है ।]

द्रौपदी—आर्य ! विवर्लित न होइये, गुत्थी अभी सुलझ जाती है ।

[ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर का प्रवेश.....द्रौपदी अपना आसन छोड़ कर प्रत्युत्थान देती है ।]

युधिष्ठिर (अर्जुन की ओर न देख कर)—देवी ! आप के कल के प्रश्नों ने हमें एक नई ही राह दिखाई है । मैं ! कुरुवंश का ज्येष्ठ प्रतिनिधि, कुरुकुल के सार्वभौम राजसिंहासन का उत्तराधिकारी आप के इस मंदिर रूप और प्रणय की याचना करता हूँ ।

द्रौपदी (हंस कर)—आर्य ! प्रणय तो मैं अभी-अभी आर्य अर्जुन को दान कर चुकी हूँ । रहा रूप, सो यह मैं आप को भेंट कर सकती हूँ ।

युधिष्ठिर—देवी ! मैं स्पष्ट बात सुनना पसन्द करता हूँ ।

द्रौपदी—महाराज ! आप अच्छी तरह जानते हैं । मेरे मन में आर्य अर्जुन का अनुराग है, फिर आप प्रणय-याचना का साहस कैसे कर रहे हैं ?

युधिष्ठिर—देवी ! मैं विवश हूँ । न चाहते हुए भी, अपने इस आग्रह का अनौचित्य अनुभव करते हुए भी तुम्हारी उस ज्वलन्त रूपराशि में तुच्छ पतंगे की तरह गिरा पड़ रहा हूँ । देवी ! मैं तुम्हें साग्रह कुरुकुल की वधू-सम्राज्ञी का पद भेंट करता हूँ ।

द्रौपदी (स्वगत)—ओह यह प्रलोभन ! इस हृदय के भीतर मानों दो स्वर पुकार रहे हैं । एक स्वर तो मानों एक सुकुमारी नारी का, जो जो रो-रो कर कह रही है—री ! तू इस जंजाल में

फँस रही है । छोड़ इस सम्राज्ञी पद की प्रबल लालसा को और डूब जा अपने प्रियतम के प्रेम सिन्धु में । दूसरा, मानों एक विषधर नागिन की फुफकार है जो फन उठा कर कह रही है—मूर्ख ! यही अवसर है तेरी प्रबल महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने का । जब अप्रतिम वीर धर्मधर अर्जुन की प्रेयसी, सार्वभौम सम्राट् युधिष्ठिर की सम्राज्ञी, कूट राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण की सखी, उद्दंड वीर धृष्टद्युम्न की वहिन द्रौपदी कुखवंश के राजमहिमन पर बैठेगी—तब मद्र, गान्धार, ब्रह्मावर्त, दक्षिणपथ, यवन कुल के राजमुकुट चूमेंगे तेरे आलवतक रंजित चरण युगल ! उस समय भारत की राजनीति के नीलाकाश में एक ही सूर्य चमकेगा—वह है, पांचाल कुमारी द्रौपदी का भाग्य-सूर्य ।
(प्रकट में हंस कर) महाराज !...

[युधिष्ठिर आवेग से उसके पास जाता है । द्रौपदी एक हाथ से उस का बायाँ हाथ पकड़ लेती है । फिर अर्जुन की ओर झुक कर उस का हाथ पकड़ कर...]

—आर्यपुत्र !...

[अर्जुन और युधिष्ठिर दोनों चकित से द्रौपदी की ओर देखते हैं]

द्रौपदी—आर्य युधिष्ठिर मैं आपका सम्राज्ञी पद स्वीकार करती हूँ ।... (अर्जुन से)—और आर्यपुत्र मैं आपका प्रेयसी पद भी स्वीकार करती हूँ ।

[दोनों सहम कर दूर छिटक जाते हैं—मानों सांप ने काट लिया हो !]

दोनों (एक साथ)—देवी ! पहेलियाँ न बुझाओ ।

द्रौपदी—आर्य, पहेलियाँ नहीं बुझाती हूँ स्पष्ट कहती हूँ । एक स्त्री है जिस के मोहक नश्वर शरीर के लिये कुल के कुल, गण के गण, देश के देश लड़के अपना नाश कर लेते हैं । दूसरी वह है जो अपने सौन्दर्य की सुधा से जीवन संग्राम में हारे हुए अगणित सैनिकों में जीवन-शक्ति जगाना चाहती है ।

दोनों—देवी ! बस करो । शीघ्र ही इस गुत्थी को सुलझाओ । हम सहन नहीं कर सकते...तुम क्या चाहती हो ?

द्रौपदी (पीछे की ओर हट कर)—हला, अशोकलता !

अशोकलता (नेपथ्य से)—आई देवि !

द्रौपदी—शीघ्र भोजपत्र, मयूर-लेखनी और मसिपात्र लेकर यहाँ आ ।

[अशोकलता लेखन सामग्री लेकर आती है । द्रौपदी शीघ्रता से दो भोजपत्रों पर पत्र लिख कर देती है ।]

द्रौपदी—जा दो क्षणों में इन दोनों पत्रों का उत्तर ले कर आ । एक पत्र मेरे पूज्यपाद तात द्रुपद के पास, दूसरा ऋषि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के पास लेजा ।

अशोकलता—जो आज्ञा देवि !

द्रौपदी—आप लोगों के सामने दो पथ प्रशस्त हैं । या तो महा-पराक्रमी सुन्द-उपसुन्द नामके अमुर भ्राताओं ने जिस प्रकार तिलोत्तमा अप्सरा के लिये लड़ कर एक दूसरे का प्राणघात कर दिया, उसी प्रकार आप दोनों भी मेरे इस क्षणभंगुर नारी देह के लिये लड़ मरिये या फिर मुझे अधिकार दीजिये मैं आप दोनों की तृष्णा बुझा सकूँ ।

अर्जुन और युधिष्ठिर—ओह देवी ! यह तुम क्या कह रही हो ? हमारी वृद्धि भंवर मे पड़ी हुई नाव की तरह चक्कर काट रही है । किनारा नहीं दिखाई देता । हे प्रभो !

[दोनों माथे पर हाथ रख कर अपने आसनो पर बैठ जाते हैं ।... द्रौपदी फिर हिंडोल पर बैठ कर आराम से झूलने लगती है ।]

...कुछ क्षणों तक रंगमंच पर निस्तब्धता !

अशोकलता का प्रवेश । वह आ कर दो भोजपत्र द्रौपदी के हाथ में दे कर चली जाती है । द्रौपदी पढ़ कर एक पत्र युधिष्ठिर को और दूसरा अर्जुन के हाथ में दे देती है ।]

युधिष्ठिर (ऊँचे स्वर से पढ़ कर सुनाता है)—मैं पांचाल देशों का अधिपति द्रुपद अपनी प्यारी पुत्री कृष्णा के सुझाव

का अनुमोदन करता हूँ। पांचाल देश की प्राचीन प्रथा जो कुछ ही वर्षों से लुप्त होने लगी है, के अनुसार सहोदर भाई एक ही पत्नी के पति हो सकते हैं। गृह-कलह और आपस के रक्तपात से बचने के लिए इसी प्रथा का आश्रय लेकर मैं अपनी कन्या पांचों पांडवों को पत्नीरूप में देता हूँ। पशुपति रुद्र और भगवती अम्बा कल्याण करें।

युधिष्ठिर (आन्त होकर)—ओह देवि ! क्या यह सम्भव है ?

[परास्त-सा हो कर फिर आसन पर बैठ जाता है ।]

अर्जुन (लड़खड़ाते स्वर में दूसरा पक्ष पड़ता है)—मैं वेदों का संरक्षक, प्राचीन आर्य गाथाओं को पुराण रूप में आबद्ध करने वाला; सर्ग, विसर्ग और मन्वन्तर के रहस्य जानने वाला कृष्ण द्वैपायन ऋषि अपने यजमान द्रुपद और अपने पुत्र तुल्य पांडवों के कल्याण के लिये व्यवस्था देता हूँ कि पांचाली द्रौपदी का पांडव बन्धुओं के साथ विवाह संस्कार सर्वथा धर्म सम्मत है। समस्त प्रजा शासक गण के पद-चिह्नों पर चलती है, अतः साधारण प्रजाजन के सन्तोष के लिये मैं यह सूचित करता हूँ कि पूर्व जन्म में द्रौपदी इन्द्र की पत्नी थी। वह इन्द्र ही इस समय पांडवों के रूप में प्रकट हुआ है। अतः भविष्य और वर्तमान का कोई धर्मवेत्ता कल्याणी द्रौपदी को बहुपतित्व का दोष देने का साहस न करे।

अर्जुन (हंस कर द्रौपदी के पास जा कर)—देवी, पांचाली ! जैसा मैं ने सुना था तुम सचमुच अपराजिता हो।

[द्रौपदी वरपं से मुस्कराती है ।]

युधिष्ठिर (मानों अब भी बेहोशी में बोल रहा हो)—पर क्या यह धर्म होगा ?

[अर्जुन और युधिष्ठिर दोनों फिर अपनी हथेलियों में मुंह छिपा लेते हैं—मानों उन्हें आँख खोल कर प्रत्यक्ष का सामना करने का साहस न रहा हो ।]

द्रौपदी (चोट खाई सर्पिणी के समान तड़प कर कुछ क्रुद्ध स्वर में पैर पटकती हुई)—महाराज ! आप धर्म के बाह्य रूप को जकड़े है । मैं आप लोगों के सम्मिलित जीवन की प्रेरणा, आप के जीवन-पथ को आलोकित करनेवाली दीप-शिखा बनना चाहती हूँ । पाण्डव-कुल में कलह और नाश के बीज बोनेवाली काल-रात्रि नहीं... (कुछ रुक कर)—प्रार्थ ! सोचिये तो सही, यदि मैं आपको अपने रूप की मदिरा पिला कर उत्तेजित कर और एक-एक तलवार आप के हाथों में दे कर कहूँ 'लो लड़ो, वीरो लड़ो, मेरे इस मोहक शरीर पर अधिकार पाने के लिये'—आप को एक-दूसरे के प्राण का ग्राहक बना कर कहूँ कि 'वीरो यह रूपमी अपनी वैजयन्तीमाला उसी के गले में डालेगी जो अपनी खड्ग प्रतिद्वन्द्वि के सीने में पार कर के उस रक्त-रंजित तलवार की नोक से मेरे चरणों में महावर लगायेगा'—तो क्या यह धर्म होगा ? यदि मेरे इस नाशवान् रूप के लिये समस्त शस्त्र-रहस्यों को जाननेवाले अप्रतिम धनुर्धर अर्जुन से वसुन्धरा शून्य हो जाय तो क्या यह धर्म होगा ? क्या मेरी आत्मा यह सह सकेगी कि मेरे इस क्षणिक रूप जीवन के मोह में धर्मराज सरीखे महानुभाव की अकाल-मृत्यु हो ? यह धर्म है या मनुष्य के ग्रह का तांडव-नृत्य ! न महाराज, न, धर्म की यह गति मेरी समझ में नहीं आती । क्षमा कीजिये ।

[तेजी से जाती है—अर्जुन और युधिष्ठिर हतबुद्धि से एक-दूसरे की ओर देखते हैं ।

सुभद्रा उठती है । अभी तक वह इस कांड को बिना एक शब्द कहे चुपचाप देख सुन रही थी । वह अर्जुन और युधिष्ठिर से तीन हाथ की दूरी पर खड़े हो कर चुपचाप ताकती है ।

सुभद्रा को देख कर दोनों की आँखें चमक उठती हैं, मानों अन्धकार में प्रकाश की नई किरण दिखाई दी हो ।]

अर्जुन (ससंभ्रम)—सुभद्रे ! तुम भी नारी हो । तुम्हीं कुछ कहो ।

सुभद्रा (मृदु मुस्कान की किरणें बिखेरते हुए)—आर्य ! क्या कहूँ । आप स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते हैं, यही पर आपकी भूल है । (सहसा उसके मुंह का भाव बदल जाता है । आंखों से तेज की किरणें छिटकने लगती हैं । उन दोनों की ओर ध्यान न दे कर मानों अपने आप कहती है) —संसार की सभी स्त्रियाँ एक-सी नहीं हैं । कुछ पुरुषों के आदेश पर नाचती हैं, तो कुछ उन्हें कठपुतलियों की तरह नचाने की शक्ति भी रखती हैं ।... (तेज स्वर में)—महाराज ! हवन-कुण्ड की मंद अग्नि के पास बैठ कर ताप तापे जा सकते हैं, पर यदि भोपण वन में धधकती दावाग्नि के पास कोई हाथ तापने जाय तो आप उसे मूर्ख के सिवाय क्या कहेंगे ? मैदान में मंथर-गति से बहने वाली सरिता को धारा में ही आनन्द से डुपकियाँ लगाई जा सकती हैं, यदि पर्वतीय चट्टानों पर उत्तुंग शिखर का ऊँचाई से गिरनेवाली पहाड़ी नदी के प्रखर सोत में कोई गोते लगाने का आनन्द लेना चाहे तो.....

युधिष्ठिर (सहम कर)—वस करो देवी !

सुभद्रा—नहीं महाराज, पूरी बात कहूँगी । यह रूप-राशि की ज्वाला, यह यौवन के प्रखर विद्युत्कण आप को जलाते हैं, अंग-अंग को झुलसा डालते हैं—फिर भी आप इसका मोह नहीं छोड़ सकते । इसलिये महाराज इस प्रबल महत्वाकांक्षा, इस दुर्दम्य इच्छाशक्ति के सामने झुकिये... (दृढ़ता से)—आपको झुकना ही पड़ेगा, झुके बिना आपका कल्याण नहीं ।

दोनों (खोये हुए से)—तथास्तु !

सुभद्रा—आर्य ! आप पांचाली को साधारण नारी समझने की भूल न करें । यह ज्वलन्त दीपशिखा है जिस का प्रकाश

एक युग का अंधकार चीर कर दूसरे युग तक पहुँचे
सहस्र अंधकार में भटकती हुई नारियों का पथ सम्भव
इसलिये . . .

अर्जुन और युधिष्ठिर (दोनों सहर्ष)—झुकने में ही
है। तथास्तु देवी !

[यवनिका पतन ।]

—:००:—

अनुक्रमणिका

इन नाटकों में शब्दों के कुछ विशिष्ट प्रयोग किये गये हैं ।
'शेमित्रा' नाटक में कुछ ऐसे शब्दों का उपयोग किया गया है, जो
आधुनिक संस्कृत और लैटिन भाषाओं की आदि जननी लोकभाषा में
प्रयुक्त होते थे । यह लोकभाषा वैदिक संस्कृत से भी प्राचीन और
इंडो-यूरोपियन कुल की समस्त भाषाओं की मूल स्रोत थी ।

शब्द	अर्थ
पर्शु	पर्शिया, ईरान ।
जनपदकल्याणी	वह नारी जो अपन दिव्य गुणों के कारण जनपद में घर-घर कुलदेवी की तरह पूजी जाती हो ।
प्लूथेव्यमातेर्स	पृथ्वी-माता ।
स्वसृ	स्वसा, बहिन । यह वह शब्द है जिससे अंगरेजी का सिस्टर शब्द उत्पन्न हुआ है ।
पुरज्जधित	पुरोहित
सवितृ	सूर्य
बारिका	लड़की
पुत्रक	लाड़ला बेटा
पेतर्स,	पितृ (पिता)

शब्द	अर्थ
मातेर्स्	मातृ (माता)
ओसेस्	‘ऊषा’ का आदि रूप
अम्बा	अम्मा
स्तुषा	वधू
विश्	निवासी, पीछे व्यापारी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा ।
ग्वौस्	गौ, गाय, अंगरेजी का ‘काउ’ शब्द इसी से निकला है ।
हला	“हलेति कोमलामंत्रणे” इस सूत्र के अनुसार पारस्परिक वार्तालाप में मृदुसंबोधन के रूप में हला शब्द का प्रयोग होता था । आधुनिक अंगरेजी में ‘हलो’ शब्द का प्रयोग बहुत कुछ उसी भाव में होता है, अन्तर केवल इतना है कि ‘हला’ शब्द संस्कृत में केवल स्त्रियोचित बताया गया है ।

विष्कम्भक नाटक में वर्णित सभी घटनाओं को रंगमंच पर दिखाना असम्भव है । सीमित काल और नाटक के मात्र एक उद्देश्य को सामने रख कर नाटककार के लिये अधिक विस्तार में जाना असंभव है, अतएव कुछ घटनाओं की केवल सूचना ही दी जा सकती है । ‘विष्कम्भक’ उस दृश्य को कहते हैं जो दो अंकों के मध्य में आता है और जिसमें दोनों अंकोंके व्यवधान में हुई घटनाओं की सूचना मध्यम अथवा निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है जैसे ‘द्रौपदी’ नाटक में हमें स्वयंवर की घटनाओं की सूचना नागरिकों द्वारा मिलती है । आगे आनेवाली घटनाओं का संकेत भी विष्कम्भक में दिया जाता है, जैसे

उपरोक्त विष्कंभक से पता चलता है कि द्रौपदी की विवाह समस्या को सुलझाने के लिये धर्म-परिषद् बैठने वाली है ।

शब्दों के इन प्राचीन रूपों के स्थिर करने में मुझे सुप्रसिद्ध भाषा-तत्त्व-विद् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी की गवेषणाओं से पर्याप्त सहायता मिली है अतः मैं उनकी आभारी हूँ ।

—शारदा मिश्र
